अन्ततः

◎

शैल हल्दिया

◎

कविता प्रकाशन, अलवर

अन्ततः

कहानी – संकलन

लेखिका	:	शैल हल्दिया
प्रथम संस्करण	:	फरवरी : 2000
सर्वाधिकार	:	लेखिकाधीन
मूल्य	:	पचास रूपये
प्रकाशन	:	कविता प्रकाशन 88, आर्य नगर, अलवर–301001 ☎ 23810
आवरण	:	चित्र – भूरसिंह शेखावत पारदर्शी – डॉ. जयसिंह नीरज
मुद्रक	:	भार्गव प्रिन्टर्स दारूकूटा, अलवर ☎ 20800

ANTATAH

Collection of Short Stories

Writer	:	Shail Haldia
Printer Edition	:	Feb : 2000
Copy right reserved with Author		
Price	:	Rs. 50.00
Published by	:	Kavita Prakashan 88, Arya Nagar ALWAR-301001 ☎ 23810
Title	:	Painting - Bhoor Singh Shkhawat
	:	Transparency - Dr. Jai Singh Neeraj
Printed By	:	Bhargava Printers Daru Kuta ALWAR ☎ 20800

स्वर्गीय पूज्य पिताश्री
श्री शंकरलाल जी जसोरिया
को समर्पित
जिन्होंने मुझे लिखने
के लिए प्रेरित किया।

— शैल हल्दिया

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

मेरी बात

यह मेरा प्रथम कहानी-संग्रह है, जिसमें चौदह कहानियाँ संग्रहीत हैं। इन रचनाओं में मेरे आस-पास रहने वाले मेरे संपर्क में आने वाले उन लोगों की कहानियाँ है जिनकी अपनी समस्याएँ हैं, अपने दर्द हैं। उनके दर्द को मैंने अपने अन्दर इतने गहरे तक अनुभव किया है कि दर्द मेरे लिए असह्य हो गया। और जब-जब ऐसा अनुभव हुआ तब-तब मैं उसे शब्दों में ढाल कर ही कष्ट-मुक्त हो सकी हूँ। अपने अनुभवों को मैंने ईमानदारी से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इसमें मै कहाँ तक सफल रही हूँ इसका निर्णय पाठक ही कर सकते है।

इस संग्रह की कतिपय कहानियों मे स्त्री की त्रासदी की अनवरत दास्तान है, जिसे वह सदियो से झेलती आ रही है, और आज भी झेलने को अभिशप्त है। इक्कीसवीं सदी के द्वार पर खड़ी औरत अभी भी अपने अन्तर्द्वन्द्वो तथा पूर्वाग्रहो से जूझ रही है। वह मुखर होना चाहती है, अपने को व्यक्त करना चाहती है, कभी-कभी होती भी है। फिर भी कहीं अपने संस्कारों, कहीं अपने अज्ञान और कहीं पुरुष के दर्प से दबी हुई वह मौन समझौता करने के लिये बाध्य हो जाती है। चक्रव्यूह कहानी में स्त्री का यही अन्तर्द्वन्द्व दर्शाया गया है। किन्तु जब उसके अपने अस्तित्व पर, उसके पत्नीत्व पर आंच आती है तो वह दो टूक निर्णय लेने मे भी नहीं हिचकिचाती है। कहानी 'अन्ततः' ऐसी ही स्त्री की कथा है।

लेखन मेरा व्यवसाय नहीं है। अतः मैंने सदा यवनिका के पीछे बैठ कर ही लिखा है। आज भी ऐसे ही लिखती हूँ। मेरे भीतर भावनाओं का उबाल हमेशा खदबदाता रहता है, उफनता रहता है। यथा प्रयास मैं उसे समेटती भी रही हूँ, परन्तु संपूर्ण रूप से संचित नहीं कर सकी हूँ।

मेरा विश्वास है कि लेखन स्वान्तः-सुखाय होता है अतः प्रकाशन का मोहताज नहीं होता, तथापि मेरी अनेक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। संग्रह में संकलित 'उलझन' व 'बापरी' कहानियाँ क्रमशः मुक्ता व सरिता में प्रकाशित हो चुकी है, तथा अन्य कहानियाँ भी अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है।

इधर काफी दिन से कुछ सुहृदजन आग्रह करते आ रहे थे कि मैं अपनी कहानियों का संकलन प्रकाशित कराऊँ। उन्हीं लोगों की शुभकामनाओं और सहयोग के फलस्वरूप यह कार्य संभव हो सका है। मेरे इस कार्य में मुझे मेरे पतिदेव, पुत्रों, पुत्रवधुओं एवं पौत्र आदित्य का पूरा सहयोग व प्रोत्साहन मिला है। इन स्वजनों व सुहृदों आभार व्यक्त करना उनके असीम स्नेह के प्रति निश्चित ही अन्याय होगा। पुस्तक प्रकाशन एवं उसे व्यवस्थित व आकर्षक रूप देने में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ० भागीरथ भार्गव का सहयोग प्रशंसनीय रहा है। उन्हें आभार।

अन्त में, मैं पाठक वर्ग की स्पष्ट प्रतिक्रिया व सुझाव का स्वागत करते हुए उनके पत्रों की प्रतीक्षा करूँगी।

—शैल हल्दिया

हल्दिया भवन
मुंशी बाजार
अलवर (राजस्थान)

बसंत पंचमी सन् 2000

अनुक्रमणिका

तीर्थयात्रा

मंदिरो के घटे बंद हो चुके थे। रात्रि पूरी तरह वहाँ पसर गई थी। अमावस्या के घोर अन्धकार मे तट की बिजलियाँ गंगा के जल में लुका-छिपी कर रहीं थी। वहाँ नहाते इक्का-दुक्का लोग भी अब तक जा चुके थे। लहरों का हल्का-हल्का आलोडन वहाँ की निस्तब्धता भंग कर रहा था। दूर धारा के प्रवाह में एक दो किश्तियाँ अभी घूम रहीं थी, और उनके चप्पुओं की छप-छप उस नीरवता में स्पष्ट सुनाई दे रही थी। मणिकर्णिका घाट पर संध्या समय जली चिताएँ अब तक शान्त हो चुकी थीं पर उनसे उठती चिंगारियाँ रह-रह कर उस निपट अंधेरे में चमक जाती थीं।

शिवराम इस सब से अलिप्त-सा अपने अन्दर मची हलचल में लीन तीसरे पहर से वहाँ मूर्तिवत बैठा हुआ था। रात के अंधेरे के साथ उसकी आँखो में पीडा की कालिमा उतर आई थी और वे सामने फैले गंगा के काले जल पर टिकी हुई थीं। लोग दिन ढले स्नान के लिए आए और स्नान-पूजा करके चले भी गए। पडे-पुजारियों ने उनके तिलक-छापे लगाए और वे भी चले गए। मंदिरों मे आरती के घंटे बजे और बन्द हो गए। धीरे-धीरे घाट वीरान हो गया। पर बुखार से तपता और खाँसी से बेहाल शिवराम वहाँ ऐसे ही बैठा रहा। वह जैसे गहन तन्द्रा में डूबा हुआ, अपने अन्दर हलचल मचाते प्रश्नो का उत्तर ढूंढ रहा हो। वे कुछ ऐसे प्रश्न थे जिन्होंने उसका जीवन ही बदल दिया था। आखिर ऐसा कैसे हो गया, क्यो हो गया ? उसने तो कभी जीवन में बहुत अधिक लालसा नहीं की थी। भगवान से कभी कुछ नहीं माँगा था। उसके पास जो भी था उसी में वह संतुष्ट रहता था। फिर यह क्या हुआ ? उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि ईश्वर उससे अचानक सावित्री को यूं छीन लेगा। ------ खैर सोचने को तो उसने बहुत कुछ नहीं सोचा था। फिर भी अनचाहा तो घट ही रहा था।

वह तो सावित्री के साथ चारों धाम करने का प्रोग्राम बना रहा था। पर हाय री किस्मत ! चारों धाम करने तो जा नहीं सका, सावित्री ही उसे छोड कर चली गई।------- उसके भाग्य में तो काशी जी के तट पर यूं असहाय और निराधार बैठना लिखा था, चारो धाम कैसे करता ?

वैसे तो यह अच्छा ही हुआ जो वह यहाँ उतर गया। दिल्ली मे ही उसके लिए क्या रक्खा था, वहाँ जाकर ही वह क्या करता ? मेरठ जाने का विचार उसने छोड ही दिया था। तीरथ मे उतर गया तो अच्छा रहा। गंगामैया में स्नान कर लिए और बाबा विश्वनाथ के दर्शन भी हो गए।

सावित्री को गुजरे पूरा डेढ बरस हो गया था। पर शिवराम को अभी भी यही लगता कि सावित्री घर में बैठी उसकी राह देख रही है और उसके घर पहुंचते ही कहेगी – आज तुमने फिर देर कर दी न। सुनो दिन ढहरे ही आ जाया करो, मुझे चिंता हो जाती है।

शिवराम की कोर से टप-टप आँसू गिरने लगे थे। गला खंखारते हुए उसने धोती के छोर से आँखे पोछ लीं। जब से आँखों में मोतिया उतरा है उसे बहुत कम, धुधला-धुंधला सा दिखाई पडता है। सावित्री की अचानक मौत से अब जैसे वह बिल्कुल अंधियाया हो गया है, और मन मस्तिष्क पाषाण-सा, एकदम जड। वो तो, राम भला करे देवीदत्त और उसके बेटे का जिन्होंने उस बखत उसे संभाल लिया वरना वह अकेला उस वज्रपात से पागल ही हो जाता। बेटे तो पीछे आए खबर देने पर। सावित्री का चेहरा ट्रक के पहिए से कुचल कर ऐसा हो गया था, कि देखा ही नहीं जाता था।

तेरह दिन तक कैसे काम-काज हुआ उसे जैसे होश ही नहीं रहा था। जो जैसे कहता जाता वह यंत्रवत् वैसे ही करता जाता था। जब तेरहवीं के बाद सब जाने लगे तो वह मानो अचानक गहरी नींद से जगा हो ऐसे सकपकाया-सा सब को जाते देखता रहा था। जब बेटी ने कहा कि, 'बाबू जी, कारज तो निबट गया, अब हम जाएँगे। --– वहाँ ससुर जी अकेले हैं, उन्हे देखना है   तुम अपना ध्यान रखना,–' तो शिवराम विस्फारित नेत्रों से बेटी-दामाद को देखता भर रह गया था। उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकल सका था। वह तो बस सूखी आँखें पोंछती बेटी को जाता देखता रहा।

सब रिश्तेदार जा चुके थे। प्रवीण और प्रदीप भी जाने के लिए तैयार हो गए थे। उनके भी काम-धंधे थे, बच्चो की पढाई थी। और कोई रूके भी क्यों ? शिवराम के पास ही अब क्या बचा था ? खाली अकेलापन और कभी न मिटने वाली उदासी ही न। बेटी-बेटे तो पहले ही पराए हो चुके थे। जो नितांत उसकी अपनी थी, सुख-दुख की सहचरी वह भी छोड कर चली गई। अब वह किससे आशा करे और क्यू करे ? सब को अपने काम-काज, बाल-बच्चो की चिंता तो थी पर बूढे बाप के अकेलेपन और उसके भविष्य का किसे अहसास था? एक गहरी सांस लेकर शिवराम बैठा रह गया। चलो बेटा शिवराम, आगे का सफर तुझे अकेले ही करना है। यहाँ कोई किसी का नहीं है।

शिवराम कई दिन तक घोर निराशा और अथाह शोक में डूबा पडा रहा था। उसके मन में गहरा सूनापन समा गया था, ऐसा सूनापन जो अब किसी तरह भरने वाला नहीं था। कई दिन ऐसे ही अवसाद मे निकल गए, पर ऐसे कब तक चलता ? आखिर उठना तो था ही । जिन्दगी भी काटनी थी। उसके लिए रोटी-रोजी का जरिया भी चाहिए था। पास-पडौसियों के बहुत समझाने पर वह किसी तरह हिम्मत करके उठा। उसने नए सिरे से नौकरी ढूंढनी शुरू की। पिछले वर्ष लबी बीमारी के कारण उसे नौकरी छोडनी पडी थी।

समय सारे जख्मों को भर देता है। धीरे-धीरे शिवराम भी सामान्य हो गया था। उसका साँझ-सवेरा घर के कामो में निकल जाता था और दिन दफ्तर में। संगी-साथी आते रहते थे। देवीदत्त रोज ही आ जाता था। जब वह नहीं आता तो शिवराम उसके घर चला जाता था। समय अच्छा व्यतीत होने लगा था। इस बीच दो बार प्रदीप बाल-बच्चों के साथ उससे मिलने आ गया था। यह बात अलग है कि बहू दोनों बार अपने साथ सास का काफी सामान ले गई। परन्तु शिवराम को इस बात का पता नहीं लगा था।

कभी-कभी प्रमिला का पत्र आ जाता था, जिसमें उसके लिए ढेरों हिदायतें होती थीं। प्रवीण दोबारा नहीं आ सका था। आता भी कैसे ? दुर्गापुर मेरठ जैसा पास थोडे ही है कि जब चाहे आ जाओ। शिवराम को उससे कोई शिकायत नहीं थी। न सही प्रवीण, प्रदीप आ गया यही बहुत है। माँ-बाप की कामना होती है कि बच्चे जहाँ रहें सुखी रहें। शिवराम अनायास ही परदेस में रहते बच्चों के प्रति ममता से भर गया था। उसने प्रदीप के बच्चों को जाते समय सौ-सौ के नोट भी थमा दिए थे। आखिर दादा का स्नेह बच्चे कैसे पहचानेगे।

खो-खों-खों शिवराम को खाँसी का दौरा पड गया था। छाती धौंकनी सी चल रही थी। वह ठंड से थर-थर काँप रहा था। कितने दिन से दवा ले रहा है किन्तु ज्वर जाने का नाम ही नहीं लेता। न जाने कैसा ज्वर है ? पता नहीं किस जनम के पाप की सजा भुगत रहा है, तभी तो बेटी-बेटों के होते हुए भी यहाँ परदेस में इस दशा में पडा है।

शिवराम घाट पर गंगा स्नान के लिए आया था। लेकिन ज्वर की तेजी के कारण उससे जल में नहीं उतरा गया। वह वहीं घाट की सीढ़ियों पर बैठ गया कि ज्वर कम हो तो स्नान करके बाबा विश्वनाथ के दर्शन करने जाए। कई दिन की बीमारी ने उसके शरीर का सत निचोंड लिया था। चेहरा सफेद पड गया था। चलने मे पैर डगमगाने लगे थे। खाँसी से हाड-हाड दुख रहा था। इस समय वापस धर्मशाला जाने की भी उसमे शक्ति नहीं थी।

दूर गली में कुत्तों ने भौंक-भौंक कर आसमान सिर पर उठा रक्खा था। पर शिवराम बेसुध सा अपने अतीत संसार में उलझा हुआ था।

विधाता ने उसके भाग्य मे कोई सुखों की गठरी तो बांधी नहीं थी। फिर भी अपने संतोषी स्वभाव के कारण उसने जीवन की ऊंच - नीच में सुख मानना जरूर सीख लिया था। परन्तु विधाता को शायद यह भी नहीं सुहाया था।

शिवराम के होश संभालने से पहले ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। गाँव मे संयुक्त परिवार की विषमताओं से जूझ - जूझ कर विधवा माँ का स्वभाव बेहद कटु हो गया था। ताऊ और दोनो चाचाओं की डांट फटकार व ताने उलाहनो के बीच शिवराम ने जैसे - तैसे दसवीं पास कर ली। पर उसके बाद काम की तलाश

मे वह शहर आया तो वहीं का होकर रह गया था। एक बार वह माँ को लेने गाँव जरूर गया था। किन्तु माँ ने बुढापे मे पति का घर छोड कर शहर जाने से इन्कार कर दिया था। बेटे के बहुत मनुहार करने पर भी वह उसके साथ शहर नहीं गई।

दुर्भाग्यवश शिवराम को माँ के देहान्त की सूचना कई माह बाद मिली। उसे एक दिन अचानक गांव के बनवारी काका बाजार में मिल गए. उनसे उसे पता लगा कि उसकी माँ उसे याद करते-करते ही चली गई। वह फूट-फूट कर रो पडा था कि कैसा अभागा है जो माँ की सेवा करना तो दूर, उसके अन्तिम दर्शन भी न कर सका।

बनवारी काका ने उसे काफी समझाया – 'सब अपणे-अपणे कर्मो के फल है बचुवा। वा दुखियारी की ऑखे तो थारी बाट जोहते - जोहते ही पथरा गई तू तो सहर ऐसा आया कि मुड कर गाँव गया ही नाय। ना तूने माई की खैर–खबर ली तेरा नया ठौर-ठिकाना गाँव में किसी को भी पता नाय था. तोकू समाचार भी कइयाँ देता ? इब रो कर जी भारी न कर भाया चुप हो जा '

शिवराम का अन्तर आर्तनाद कर रहा था, सच है, वह माँ को कोई सुख न दे सका यहाँ तक कि उसे लकडी भी नहीं दे पाया। कैसा दुर्भाग्य है उसका। क्या इसी पाप की सजा प्रभु उसे इस समय दे रहे हैं? शायद इसीलिए वह बेघर हुआ यहाँ पडा है सब उसकी ही किस्मत का दोष है।

माँ की याद आते ही वह बेहद दुखी और अशान्त हो गया। उसने मन को संतोष देने का प्रयत्न किया पर उसे कैसे भी शान्ति नहीं मिल रही थी। इसी बेचैनी की हालत मे रह - रह कर उसके कानों में बडी बहू की खुसपुसाती आवाज बज रही थी – तुम्हारे बाबू जी को न जाने क्या बीमारी है ? सारे दिन खाँसते थूकते रहते हैं सुनो जी, न हो तो उन्हे किसी अस्पताल में भर्ती करा दो। कहीं बच्चो को छूत-चूत न लग जाए " और बेटे का जवाब 'ठीक है, कल पता करूंगा।'

शिवराम सुन कर काठ हो गया था, छी छी क्या मुझे कोई छूत की बीमारी है ? हे ईश्वर, यह सुनने से पहले मेरे प्राण क्यो नहीं निकल गए।

शिवराम के प्राण तो नहीं निकले, लेकिन वह बिना कहे बेटे के घर से जरूर निकल गया। अब यहाँ रहना उचित नहीं। एक बार प्रदीप का मन भी देख लूं वर्ना अपना तो दिल्ली ही ठीक है। ईश्वर सब पार लगाएगा।

दिल्ली जाते हुए रास्ते मे उसका विचार बदल गया - मेरठ मे बच्चों के बीच क्यो जाऊ ? और वह वाराणसी का स्टेशन देख कर अधबीच में उतर गया - प्रभु का धाम क्या बुरा है ?

ज्यादा सोचने से शिवराम की कनपटियाँ सनसनाने लगी थी। मन एकदम क्लांत हो आया था। चारो तरफ भाँय - भाँय करता अंधेरा था।

वहाँ घूमते आवारा कुत्ते इधर-उधर सूघते चाटते घुरघुरा रहे थे। जली चिता पर मंडराती चील की चीख रात्रि की निपट निरस्तब्धता को तोडती शिवराम के निस्पृह, निस्पद दिल को देर तक दहला जाती थी।

सुबह से शिवराम ने कुछ खाया नहीं था। शरीर एकदम निढाल हो रहा था। जमाने भर के सोच के बीच मे से धर्मशाला बदलने की चिंता भी सिर उठा कर उसे चिंतित किए थी कि ज्वर की हालत में कहाँ दूसरी जगह खोजूं ? उसने मैनेजर से कितनी विनय की कि दो - तीन दिन और रहने दो फिर चला जाऊंगा। इस समय इस हाल मे कहाँ जाऊं ? पर मैनेजर ने दो टूक उत्तर दिया था – 'रहने कैसे दूं भाई, सात दिन से ज्यादा रहने देने का नियम नहीं है मुझे अपनी नौकरी गवानी है क्या ?'

कांपते पैरों से वह निकल पडा था। सोचा गंगा स्नान और भोले बाबा के दर्शन करके किसी दूसरी धर्मशाला मे ठौर - ठिकाना देखूंगा। लेकिन अब तक वह स्नान ही नहीं कर सका था। आज उसका शरीर साथ नहीं दे रहा था। बार - बार बेहोशी सी छा रही थी, पल - पल में खाँसी का दौरा पड रहा था।

आते - जाते लोगो मे से किसी ने कहा था – 'आज तुम्हारी तबियत ठीक नहीं मालूम दे रही है बाबा। तुम घर जाकर आराम करो।'

'हाँ भाई, जरा-सा ज्वर है। गंगा मैया में एक डुबकी लगा लूं, फिर घर ही जाऊंगा।'

'सीत से तो पहले ही कांप रहे हो। गंगा में डुबकी लगाओगे तो ज्वर और बढ जाएगा।'

'शिवराम ने उत्तर नहीं दिया। वह फीकी सी हँसी के साथ सीढियाँ उतरने लग गया। धीरे -धीरे रात घनी होती चली गई और घाट सूना हो गया।

आसमान से उतरती हुई मीठी - मीठी सर्दी मे धरती में पडे - पडे शिवराम अकड गया था। मुँह अंधेरे स्नानार्थी घाट पर पहुंचने लगे थे। ज्योंही एक आदमी घाट की अंतिम सीढी पर पहुंचा उसका पैर शिवराम के बदन से लगा। वह चौक कर शिव शिव करता पीछे हट गया। ब्रह्ममुहुर्त की उस बेला मे लोगो ने देखा कि घाट की अन्तिम सीढी पर पानी में भीगी एक निर्जीव काया पडी है। क्षण भर में वहाँ भीड इकट्ठी हो गई। एक व्यक्ति पुलिस को सूचना देने दौड गया।

आखिर शिवराम की तीर्थयात्रा पूरी हो गई थी। ●

पीपल का दर्द

मैं पीपला मैदान से गुजरा तो मुझे लगा जैसे कि मुझे कोई पुकार रहा है। मै ठिठक गया। पीछे मुडकर देखा। वहाँ कोई नहीं था। मैदान में मशीनों की घडघडाहट के सिवाय मुझे न कुछ साफ सुनाई दिया, न कोई दिखाई दिया। मै फिर चल पडा। फिर आवाज आई। अब मैने ध्यान से सुना। आवाज घुटी - घुटी सी थी मानो किसी गुफा मे से आ रही हो। जैसे कोई कह रहा हो कि तुमने भी मुझे नहीं बचाया। मुझे क्यों कटने दिया, बोलो तुमने मुझे क्यों कटने दिया ? मैं चौंक पडा। अरे, यह तो पीपल की आवाज है। हाँ वही, बिल्कुल वही पत्तों की सरसराहट और हवा के साथ आती धीमी - सी आवाज। आश्चर्य। पीपल तो कट चुका था। अभी पिछले हफ्ते ही तो उसे काटा गया था, फिर यह आवाज ? क्या यह उसकी आत्मा की पुकार थी जो कटने के बाद अभी भटक रही थी। गीता में कहा तो गया है कि आत्मा मरती नहीं है। परन्तु क्या पेड की भी आत्मा होती है और वह भटकती रहती है ? यह क्या, मैं क्या सोच रहा हूं ? अवश्य यह पीपल की ही पुकार है। क्यों कि यह कोई साधारण पेड नहीं था, और मेरा तो उससे गहरा संबध था। अत मुझे शंका कैसी ?

सवालो के व्यूह में घिरा मैं अपराध बोध से भर उठा था। सचमुच यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि मैं उसे कटने से नहीं बचा सका। मैं ही क्या, मेरे साथ गाँव के लोगो ने भी बहुत प्रयत्न किया था, कि उसे नहीं कटने दिया जाय, किन्तु बलवीर सिंह के

भारी भरकम राजनीतिक प्रभाव के सामने हमारी बात नहीं सुनी गई। और सबके बहुत विरोध के बाद भी वह पेड तथा उस मैदान में लगे सारे पेड काट दिए गए लगभग डेढ सदी पहले अंकुर के रूप मे फूटे पीपल के एक बीज ने समय के लम्बे अन्तराल मे विशाल वृक्ष बन कर वहाँ बसी छोटी सी बस्ती नुमा गाँव को अपने आँचल मे समेट लिया था। गाँव के बाजार के सहारे जो सीधी सडक उत्तर को गई है उस पर करीब पाँच कोस चलने के बाद यह मैदान है, जहाँ पहाडी की तलहटी में पीपल फैल गया था। इस बीच न जाने कितने आँधी आई, तूफान आए पर पीपल ज्यों का त्यो अचल खडा रहा। बल्कि हर पतझड के बाद वह और अधिक सघन होता चला गया। अफसोस कि अब वह एक व्यक्ति की महत्वाकाँक्षा का शिकार हो कर भूमि - सात हो चुका था।

मैं यह बता चुका हूं कि इस पेड से मेरा गहरा रिश्ता था। मेरे बचपन ने उसके नीचे ही कुलांचे भरी थी। वह मेरे जीवन की अनेक घटनाओं का साक्षी सदा रहा। मैं प्रतिदिन इसी मैदान मे से होकर पाठशाला पढने जाता, खाली समय में अपने साथियों के साथ यहाँ गिल्ली डंडा और कंचे खेलता रहता, पत्थर मार कर पीपल के फल तोड कर खाता रहता। यही मेरी दिनचर्या थी। हम बच्चे उसके नीचे खूब ऊधम मचाते। मेरे कुछ साथी पीपल का चढावा भी खा जाते थे, लेकिन वह सदा प्रसन्नता से झूमता रहता था। बडे होने पर मैंने न जाने कितनी बार उससे बातें भी की थी। अपनी चिंता और अवसाद के अनेक पल मैंने उसकी शीतल छाँह मे बैठ कर गुजारे थे। मेरी चिंता और परेशानी को वह सदा अपने सुरभित मंद झोकों से दूर करने का प्रयत्न करता था। अपने ऐसे मूक निस्वार्थी साथी के बिछोह पर मैं स्वयं बेहद खिन्न और दुखी था पर आज उसी ने मुझे आरोपों के कटघरे में खडा कर दिया।

यूं तो पेड के कटने से गाँव के सभी व्यक्ति दुखी थे, क्योंकि उसके साथ सारे गाँव का संबंध था। पर बहुत कम लोग इस संबंध का महत्व समझते थे। अधिकतर व्यक्ति इसे एक दुखद घटना मान कर भूल चुके थे। वैसे भी स्वार्थ के सामने ऐसे भावुक संबंधों का कोई मूल्य नहीं होता है। पेडों का क्या, वे तो उगते रहते हैं, कटते रहते हैं। उनके कटने पर हमेशा दुख थोडे ही मनाया जा सकता है ? खैर अपनी - अपनी समझ की बात है।

यह कथा उस गांव की है जहां अडतालीस बरस पहले मैंने एक किसान के घर जन्म लिया था। मेरा बचपन भी अन्य बच्चों की तरह पीपल तले ही खेल-कूद कर बीता था। बडे होने पर पढाई पूरी करके मैं गाँव के प्राइमरी स्कूल में मास्टर बन गया था। गाँव-गाँव में शिक्षा के अर्न्तगत उस समय यहाँ प्राइमरी स्कूल खोला गया, जिसमें मैं ही एक मात्र शिक्षक नियुक्त हुआ था। दो साल बाद एक मास्टर और आ गया था। तब मेरा तबादला दूसरे गाँव में हो गया था।

उत्तर की ओर रामनगर रोड पर टूटी-फूटी सडक से जुडा यह गाँव जिला मुख्यालय से करीब पचास-साठ किलो मीटर पडता है। दो सौ घरो की बस्ती वाले इस

गाँव मे सर्वाधिक घर ठाकुरों के थे। कुछ बामनो और बनियों के तथा बाकी नाई, धोबी मेव मीणा आदि के थे। यानि सातो जातियाँ वहाँ बिना किसी झगडे-फसाद के प्यार मुहब्बत से रहतीं। यद्यपि चुनावी समीकरण के लिए नेताओं ने वहाँ जाति के आधार पर भेद-भाव पैदा करना शुरू कर दिया था, फिर भी उस समय तक गाँव में लोग एक दूसरे की मर्यादा का ध्यान रखते थे।

वह स्कूल, जिसमे मै पहले मास्टर था, अब सैकेन्ड्री स्कूल हो गया था। अब दस साल बाद मैं फिर इसी स्कूल मे प्रधानाध्यापक बन कर आया था। दस साल में तो गाँव का नक्शा ही बदल गया था। नए जमाने की चमक इस दूर-दराज के गाँव मे भी आ पहुँची थी। बिजली आ गई थी और सडकों पर टेलीफोन के खंबे भी गडने शुरू हो गए थे। गाँव के कच्चे मकानों के बीच-बीच में पक्के मकानों की संख्या बढ गई थी। ये नए ढंग के बने मकान गाँव की बढती समृद्धि का परिचय दे रहे थे।

गाँव का बाजार भी पहले की अपेक्षा बडा हो गया था। बिस्कुट, डबलरोटी व ठंडे पेय की बोतलें भी एक दुकान पर मिलने लगीं थीं। एक पान की दुकान भी खुल गई, जहा सारे दिन-खाए के पान बनारस वाला-गाना बजता रहता था।

ठाकुर साहब की पिछली हवेली में एक लडकियों के लिए भी स्कूल खुल गया था। कहते हैं ठाकुर साहब के प्रयत्नों से ही वह स्कूल खुला था। पांच साल पहले ठाकुर साहब ने अपनी अनपढ इकलौती बेटी की शादी एक फौजी कैप्टन से कर दी थी। लेकिन फौजी अफसर का गाँव की अनपढ लडकी से ताल-मेल नहीं बैठा, सो उसने जोड–तोड बिठा कर तलाक ले लिया। ठाकुर की बेटी जैसे गई थी, वैसे ही दो साल बाद वापस लौट आई। इससे ठाकुर साहब को जबर्दस्त धक्का लगा। तब से वे स्त्री शिक्षा के पक्षधर बन गये थे। अत. मरने से पहले उन्होंने अपनी पिछली हवेली स्कूल के लिए दान में दे दी थी।

दो सौ घरों की बस्ती वाला यह गाँव अब पहले जैसा नहीं रह गया था। बलबीर सिंह के एम एल ए बनने के बाद तो जैसे इसकी काया-पलट हो गई थी। निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर अब यह कस्बे के रूप में विकसित हो रहा था। लेकिन यह केवल इसकी भौतिक प्रगति थी। गाँव की पुरानी संस्कृति लुप्तप्राय हो रही थी। अन्दर से जैसे कुछ टूटने लगा था, बिखरने लगा था। परिवार और समाज की परम्पराएँ तथा लोगों के नैतिक-मूल्य बदल रहे थे। गाँव वालो के रहन-सहन, पहनावे-उढावे पर शिक्षा तथा शहरी आवागमन का स्पष्ट प्रभाव पडने लगा। ग्राम्य-जीवन की सरलता तिरोहित होने लगी, यानि ग्रामीण संस्कृति पर कस्बाई संस्कृति हावी होने लगी थी। पीपल का वह पेड जो यहाँ के धर्म और संस्कृति का स्तम्भ था, अब अपना अस्तित्व खो चुका था।

परन्तु मेरी दृष्टि के सम्मुख अभी भी पुराने गाँव का चित्र घूम रहा था। उन दिनो साँझ ढलते ही पीपला मैदान की सडक पर आवाजाही बन्द-सी हो जाती थी। दिनभर जहाँ गाँव के बच्चे खेलते रहते, सूरज के बिदा होते ही वह मैदान एकदम

खाली हो जाता था। लेकिन तब दूर-दूर से ढेर सारे पक्षी आकर उन वृक्षो पर बसेरा कर लेते तथा अन्धेरा होने तक अपने कलरव से उस जगह को गुंजायमान रखते। उनको न वहाँ नाचने वाले भूतों का भय होता और न वहाँ भटकती आत्माओं का। दिनभर की थकान से निढाल वे वहाँ रात्रि व्यतीत करते और पौ फूटते ही पीपल के आश्रय मे अपने बाल-बच्चों को छोडकर निश्चिंत हो दाने-पानी की तलाश में निकल जाते थे।

पीपल की निचली शाखाओं पर ढेरों मन्नतों मनौतियो के डोरे व लीरें बंधी रहती। गाँववालों को विश्वास था कि यह पेड भी किसी पीर-औलिया के समान लोगों की मुरादें पूरी करता है। और उनके दुख दर्द दूर करता है। यदि किसी के बच्चा न हो या घर में लडाई झगडा रहता हो, या कोई बीमारी से परेशान हो अथवा मुकदमा-टंटा जी को लगा हो, तो वह यहाँ आकर पीपला देव की मन्नत मांग ले। उसकी मुराद निश्चित पूरी होती थी। मन्नत मांगने के लिए मुरादी शनिश्चर की सुबह नहा धोकर आता और पाँच पैसे, पॉच बताशे और सुपारी चढा कर पीपल की डाल में काला, पीला, लाल कैसा भी डोरा बांध देता था। उसी प्रकार मन्नत पूरी होने पर शनिवार को देसी घी का हलुआ चढा जाता। यह परम्परा बरसों से चली आ रही थी।

शनिश्चर के दिन वहाँ खेलने वाले आवारा किस्म के छोकरो की मौज बन जाती थी। वे हलुए को प्रेम पूर्वक छकते तथा चढाने वाले को दुआ देते थे। सीधे-सादे बाकी बच्चे दूर खडे उन्हें हुलुआ चट करते देखते रहते थे। उनके मुँह में हलुआ देख कर पानी आता रहता पर वे डर के मारे उनके पास भी नही फटकते थे। उनकी माओं की सख्त हिदायत रहती कि वे उन चीजों के हाथ भी नहीं लगाएं, क्योकि वे चीजे पीपला देव के निमित्त चढाई जाती थी। बच्चों के कोमल मन में यह विश्वास बैठा दिया गया था कि जो बच्चा हलुआ खाएगा उसे पीपला देव शाप देगे। फलत वे बच्चे वहाँ खेलते तो रहते, किन्तु चढावा नहीं छूते थे। त्यौहारों पर औरते पीपल की पूजा करती तथा उससे अपने सुहाग और बच्चों की मंगल-कामना करती थी। इस तरह वह वृक्ष गांव के जन-जीवन से जुडा हुआ था।

उन दिनों ग्राम वासियो की जुबान पर पीपल से संबंधित अनेक किंवदन्तियाँ रहती थीं। साँझ होते ही चौपाल पर लोग इकट्ठे हो जाते, फिर किस्से छिडते। एक कहता – रामेसुर की घरवाली ने पीपला की मन्नत मांगी थी, देखो नवें महीने ही लडकी हो गई। दूसरा कहता कि गोपाल प्रसाद का मुकदमा एक पेशी में ही निबट गया। बिल्कुल सच्ची बात है।

'मंगतू का बेटा हीरा कल देर रात सहर से लौट रहा था, वाने मैदान में पीपला देव को नाचते देखा तो वाकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। जैसे - तैसे हनुमान चालीसा बोलता वह घर पहुचा।' यह मंगल ने बताया।

'अरे, तुमकूं के अब ठीक पडी है ? ई तो रोज की बात है। म्हाणे तो घणी बेर देवी देवतान कूं नाचते देखौ है।

बुढ्ढा की बात सुन कर कइयों की आंखे फट जातीं – 'सच्ची ?'

'और नई तो के ? आधी रात होते ही वहां दिन का सा उजाला छा जावे है, फिर देखो छमा–छम कहो तो कल दिखा दूं ?' सभी सिर नकारात्मक हिल जाते। कौन देखे देवतान का नाच ? जाने किस पर कोप फट पडे।

'भई बात तो एकदम सच्च है ' सीताराम पटवारी कहता – पर देवतान से डरबे की बात नहीं होवे, उनकू ढोक कर चुपचाप निकल जाओ। वे कछू नाय कहे।

'कहवे हैं जिनकी अकाल मौत हो जावे है, उनकी अतृप्त आत्मा पीपल पर बस जावे है और योई रात मे नाचै कूदे है।'

'एक दम झूठ'

'के बेरो के सच्च है के झूठ ? '

परन्तु रामदीन दूसरी ही कहानी सुनाता। उसने बताया कि पीपल पर पूरब वाले बाबा जी की आत्मा रहती है।

'ये पूरब वाले बाबाजी कौन ?' कोई आगन्तुक पूछ बैठता।

लगभग सो बरस पहले यहाँ पहाडी की तलहटी मे एक बाबाजी आकर टिक गये थे। वे कहाँ से आए इस बारे किसी को ठीक से पता नहीं। कहते हैं उनकी उम्र डेढ सौ साल से ज्यादा थी। सीधा-सट्ट लकडी की तरह तना शरीर, छाती तक झूलती धवल दाढी। उनके बत्तीस दाँत ज्यों के त्यों थे। चलते तो जवानों को मात करते। बाबाजी भोजन नहीं करते थे। जब पीपल फलता तो बस उसके फल खाते थे। सारा दिन इसी वृक्ष के नीचे धूनी रमाए बैठे रहते। गॉव वाले उनके पास अपने दुख-दर्द लेकर आते। वे उनको चुटकी भर भभूत देते और कहते ' जा बेटा देव भला करेंगें।' रोगी उनकी भभूत से ही ठीक हो जाते थे। औरते बच्चो के झाडा लगवातीं। और ताज्जुब की बात। वे चढावे में अंजुरी भर सफेद फूल और दो बताशे मात्र लेते थे।

साठ-सत्तर बरस पहले वे अचानक वहाँ से लुप्त हो गए। कहाँ गए कैसे गए कुछ पता नहीं। हां, वे एक बार बीमार हो गए थे। उन दिनों न जाने कहाँ से आकर एक विधवा औरत और उसका लडका बाबाजी की सेवा-टहल करने लगा। वह औरत चुपचाप बाबाजी की सेवा करती रहती तथा किसी से बात नहीं करती थी। लडका अलबत्ता आने जाने वालो से बोलता - बतलाता रहता। उसने बताया कि वे लोग दूर पूरब से आए हैं। बाबाजी उसके पिता के पडदादा हैं। कुछ दिन बाद मॉ-बेटे चले गए। बाबाजी पूर्ववत रहते रहे। तभी से वे पूरब वाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

उनके लोप होने के बारे मे एक और अफवाह थी कि उनका किसी ने कत्ल

कर दिया। क्योकि उनके लुप्त होने के कुछ दिन बाद सुना गया कि पास के गॉव मे भूरेसिंह की ढाणी के पास बोरे में बंधी एक बूढे आदमी की सडी हुई लाश मिली थी। उसके लम्बी सफेद दाढी थी। पुलिस ने लाश को कब्जे में कर लिया। कुछ लोगों को तो पूरा विश्वास हो गया था कि वह बाबाजी की ही लाश थी।

गाँव से बाबा क्या गए मानो वहाँ का जीवन ही चला गया। निर्लिप्त रहते हुए भी वे लोगों के जीवन-मरण, सुख - दुख सब मे ऐसे घुल - मिल गए थे कि लोगों को उनके बिना सूना - सूना लगने लगा था। कुछ व्यक्तियों का कहना था कि बाबा को भी गाँव से मोह हो गया था। अत मरने के बाद उनकी आत्मा पीपल पर निवास करने लगी थी और वही अब गांव वासियों के दुख-दर्द दूर करती थी। पीपल की भाँति बाबा भी गांव की संस्कृति के अग बन गए थे। और अब वे दोनों ही नहीं थे।

मैं अभी भी पुराने गॉव के बारे में सोच रहा था। डेढ सौ साल पुराना पीपल का पेड और उसके इर्द-गिर्द बसा यह गाँव, जिसके बच्चे बूढे सभी की दिनचर्या पीपल से शुरू होकर उसी पर खत्म होती। वह पेड लोगों के धर्म और संस्कृति की पहचान था। पीपल है तो बस्ती है, और बस्ती है तो पीपल . . आज बस्ती तो है पर पीपल ?

उस मैदान में अब फैक्ट्री की हलचल थी। सुबह से ही मजदूरों की ठक - ठक शुरू हो जाती। मैं जब भी उधर से गुजरता तो मुझे चलती मशीनों में पीपल की कराहट सुनाई देती। ऐसा प्रतीत होता कि मशीनों के नीचे पिसती उसकी आत्मा पुकार-पुकार कर कह रही हो कि मुझे क्यों काटा ? मैं किसी की क्या हानि कर रहा था। फैक्ट्री वालों का मुझे काटने से क्या भला हुआ ? मुझे तो बस दस हाथ जमीन ही तो चाहिए थी, वह भी मुझसे छीन ली गई ? क्यों ? मैं तो गाँव के ढोर-डंगरो और आते-जाते पथिकों को शीतल छाया और ताजी ठंडी हवा देता था। फैक्ट्री के काम में मैं कब आडे आ रहा था।

मेरे मुख से गहरा निश्वास निकल गया। सचमुच पेडो को काट कर प्रगति करने की संस्कृति बहुत घातक है। पीपल के दर्द को भला वह शहर का छोकरा बलबीर सिंह कैसे अनुभव कर सकता था ?

पहले यह एक प्राकृतिक गाँव था जिसकी अपनी एक सांस्कृतिक पहचान थी। उसकी बोली-चाली, पहनावा-उढावा, देवी-देवता सबका एक विशिष्ट महत्व था। अब वे सब नष्ट प्राय हो रहे थे। अब जो बन रहा है, वह है आत्मा रहित रोबोट की तरह विकसित होता एक आधुनिक कस्बा। •

यही रास्ता

पींपींपीं ऽ चीं ऽ चीं ऽ चीं ऽ ब्रेक लगा। तेजी से भागती एक मारूति वैन झटके से तुषार के ठीक पास आकर रूक गई थी। बाहरी दिल्ली की व्यस्त सडक पर तेजी से दौडती मोटर गाडियॉं। ऐसे में हार्न देने से भी आदमी यदि बीच सडक से न हटे तो क्या हो सकता है ? वह तो तुषार की किस्मत अच्छी थी वरना

तुषार एक बारगी हक्का-बक्का रह गया था।

" बहरा है क्या ? " हार्न सुनाई नहीं देता ?' कार के अन्दर से ड्राइवर चिल्लाया, परन्तु तुषार हटा नहीं नहीं था, जैसे उसे ड्राइवर का चिल्लाना सुनाई नहीं दिया हो। वह सॅंज्ञा शून्य-सा बस चालक को देखता रहा था। वह सचमुच बहरा हो गया था। उसे इस समय कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। आँखे फाडे अपनी ही उम्र के से उस नवयुवक को घूर रहा था जो सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगाए स्टियरिंग पर बैठा उसे हिकारत से फटकार रहा था। उसके मन में एक कसक-सी उठी ---- काश वह भी ऐसे ही किसी कार मै बैठा होता - 'की थी हमने भी तमन्ना ऐसी, काश कि पूरी हो जाती।'

' मरने को खडा है अभी तक ? नवयुवक को तुषार की धृष्टता पर बेहद ताव आ रहा था। उसने उतर कर तुषार के एक झापड रसीद किया और उसे किनारे धकेल दिया। इतनी देर मे वहॉं भीड जमा हो गई थी। मारूति के पीछे वाहनों की लाइन लग गई थी पीऽपीऽपीऽ।

' खुद भी मरेगे ओर हमे भी मरवाएँगें, स्साले.' युवक ने झटके से कार स्टार्ट की और तेजी से ले गया। अब तक पुलिस वालो ने आकर तुषार को संभाल लिया था ------- क्यों बे स्साले, यहाँ मरने के लिए खडा था। 'कांस्टेबिल ने दो करारे हाथ तुषार के जमा दिए।

– 'सडक पार करने में फँस गया होगा बेचारा।

– 'बच गया बच्चू, तकदीर अच्छी थी।'

– 'माँ बहन की दुआऐं काम आ गई। ' जितने मुँह उतनी बाते।

– 'अजी हवलदार सा० जाने दो बेचारे को, देखते नहीं कैसा खौफजदा हो रहा है। 'भीड में से एक आवाज आई।

– 'जाने कैसे दूं। इसका सीधा-सीधा दफा 306 का केस बनता है।'

– 'अरे गरीब को क्यों कचहरी में घसीटते हो अब जाने भी दो

– 'क्यों तेरा कुछ लगता है क्या ? ' वह आदमी भीड में से चुप-चाप खिसक गया। 'क्यो बे, ले चलूं तुझे थाने ? खुदकशी करने चला था न ? 'सिपाही ने उसे पकड कर उठाने की कोशिश की परन्तु तुषार उसके पैर पकड कर घिघियाने लगा – 'हवलदार साब मैं बहुत दुखी हूं मै मरना चाहता हूं. . . '

' अबे स्साले अभी मरना ही चाहता है तुझे थाने ले जाना ही पडेगा जब जेल मे चक्की पीसेगा तो मरना-वरना भूल जाएगा। उट्ठ . ... . '

तुषार स्तब्ध रह गया। जेल .. . .. चक्की .. .. क्या कह रहा है यह हवलदार। उसने क्या जुर्म किया है ? उसने सोचा ही नहीं कि आत्महत्या करना भी कोई जुर्म हो सकता है। वह कुछ बोल नहीं सका बस बितर - बितर सिपाही का मुँह ताकने लगा। उसकी भयभीत आँखो में कान्सटेबिल को पता नहीं क्या दिखाई दिया, बोला . ' चल जा, आज तुझे छोड दिया। आइन्दा तू खुदकशी करने की कोशिश न करना' . उसने तुषार की पीठ थपथपाई - 'हिम्मत रखनी चाहिए . . . नौजवान होकर ऐसा सोचना भी नहीं चाहिए।'

' बडा बुरा जमाना आ गया है। हट्ठे-कट्ठे नौजवान मरने की सोचते है 'लोग बोलते-बतलाते अपनी अपनी राह हो लिए।

तुषार अभी तक सडक के किनारे बैठा था। लात घूँसो की मार से उसका पोर - पोर दुखने लगा था सिर चकरा रहा था और पैर लडखडा रहे थे। उसकी ऑखो मे अभी भी दहशत भरी थी यदि कान्सटेबिल उसे नहीं छोडता और पकडकर थाने ले जाता तो यदि उसके खिलाफ आत्महत्या का केस दर्ज हो जाता तो ? तो क्या होता ? बाबूजी क्या करते ? इसकी कल्पना मात्र से वह पसीने - पसीने हो गया। और यदि कहीं वह मोटर के नीचे दब कर अध मरा हो जाता तो ? इतने सारे तो उसके सम्मुख विकराल प्रश्न बन कर खडे हो गए। उसने घबरा कर ऑखे बन्द कर ली परन्तु बन्द ऑखों के सामने उसका लुज-पुज सा सीखचो मे बन्द चित्र घूमने लगा। उसने ऑखें खोलकर देखा कहीं कुछ नहीं था। वह वैसे ही पडा हुआ था। उसे लगा कि सडक के बीचो-बीच अभी भी उसका दुर्भाग्य खडा उसका इन्तजार कर रहा है। यद्यपि वहॉ- सब कुछ सामान्य हो चुका था। वाहन अनवरत आ जा रहे थे और किसी को भी तुषार की तरफ देखने या सोचने की फुर्सत नहीं थी।

वह सोच रहा था कि उसकी किस्मत बहुत खराब निकली तभी तो मौत उसे बस छू कर ही चली गई, मर जाता तो छुट्टी मिल जाती .

वह बेचारा अनजान आदमी कैसे मर गया था। क्या उसे पता था कि उसका आज अंतिम दिन है ?घटा भर पहले एक्सीडेंट से मरे उस व्यक्ति को देख कर तुषार विचलित हो गया था। तभी उसके मन मे एक विचार कौध गया कि यदि उसका भी एक्सीडेट हो जाय और वह किसी मोटर के नीचे दब कर मर जाय तो निश्चित ही उसके दुखों का भी अत हो जाएगा। वह आदमी तो अकाल ही काल के गाल में समा गया था। तुषार के समान वह दुखी और हताश नहीं होगा। उसके घर पर उसकी माँ, पत्नी और बच्चे प्रतीक्षा कर रहे होगे। पर तुषार की प्रतीक्षा कौन करेगा ? केवल ताने और उलहाने न। उसे तो निश्चित ही मर जाना चाहिए तभी वह बाबूजी के तानों, माँ के उलहानों और भाई-बहन की ऑखों में झॉकते प्रश्नो से छुटकारा पा सकेगा। तुषार अभी तक अपने में उलझा हुआ था।

सुबह वह घर से कोरी चाय पीकर निकल आया था। मॉ पुकारती रह गई थी कि लल्ला रोटी खा कर जा। परन्तु लल्ला ने माँ की आवाज अनसुनी कर दी थी। उसके कलेजे मे बाबूजी के शब्द बर्छी की तरह चुभ रहे थे लाट् साहब अभी तक बाप के बल पर ही निट्ठल्ले घूम रहे है . . . वे देर तक बडबडाते रहे थे। तुषार इसके आगे नही सुन सका था।

उसने अपनी तरफ से नौकरी ढूंढने मे क्या कोई कसर छोडी थी, जो बाबूजी उसे हमेशा ताने देते रहते है ? यदि उसे नौकरी नहीं मिल रही है तो वह क्या करे ? कैसे किसी के यहां जबर्दस्ती घुसे ? कितने सारे आवेदन भेज चुका था, कम्पीटीशन मे भी बैठा किन्तु कहाँ तक ? हर आवेदन और कम्पीटीशन के लिए रूपयो की

आवश्यकता भी तो पडती है। उनके लिए रूपये कहाँ से लाए ? वो तो माँ सिलाई करके उसके लिए जैसे-तैसे रूपयो का प्रबन्ध करती रहती थी वरना बाबूजी से क्या वह दो रूपये भी कभी माँगता है ? जिस इन्टरव्यू के लिए कॉल आए भी तो नतीजा वही ढाक के तीन पात। पहले तो आरक्षण और फिर आवेदकों की लंबी लाइन। इस पर भी उसके बायोडेटा में न कोई टैक्निकल डिग्री न किसी प्रभावशाली व्यक्ति का रैफरेंस न एक्सपीरियंस। ऐसे में तुषार का नम्बर आना उसके लिए बिल्ली के भाग्य छींका टूटना जैसा था। मिलने वाले कहते – ' भाई आजकल आर्ट की डिग्री को कौन पूछता है, सब टैक्निकल नो हाऊ चाहते हैं।

वह फिर उन्ही रास्तो पर भटकने लगता जिन्हें न जाने कितनी बार वह नाप चुका था। और पता नहीं कब तक घिसटता रहेगा इन रास्तों पर ? नौकरी के लिए चक्कर लगाते - लगाते वह यहा के चप्पे - चप्पे से परिचित हो गया था। कौन सा ऑफिस किस रोड की किस बिल्डिंग के किस माले के किस कमरे में है, यह उसे जबानी हिब्ज हो गया था। उसने हर जगह के इतने चक्कर लगाए थे कि जूते का तला भी घिस गया था। अब वह हताश हो गया था, पूरी तरह हताश। उसके लिए बाहर नौकरी के दरवाजे बंद थे और घर में घरवालो के दिलों के। फिर ऐसे जीने से क्या फायदा ? कभी - कभी उसे लगता कि वह पैदा ही मरने - खपने के लिए हुआ था। बचपन से ही मेहनत से पढ कर कुछ बनने की चिंता मे घुलता रहा है पर कोई नतीजा नहीं हुआ।

तुषार होशियार था । एम ए में प्रथम श्रेणी अच्छे नम्बरों में आने का उसे पूर्ण विश्वास था। कॉलेज में इंगलिश के लैक्चरर का स्थान एक वर्ष से रिक्त था। तुषार की निगाह इस पर जमी थी यदि वह उच्च श्रेणी के नम्बरों मे पास हुआ होता तो उसे अवश्य यह स्थान मिल जाता। साथ में पी एच डी कर लेता तो परमानेंट हो जाता, किन्तु भाग्य को क्या कहे। दिक्कत तो तब आई जब परीक्षा से ठीक पहले वह गंभीर रूप से बीमार हो गया। जैसे - तैसे परीक्षा तो दी परन्तु परिणाम ! तुषार परीक्षा छोडना चाहता था, पर बाबूजी के भय का भूत ! उसने इम्तहान दिला ही दिया। वह जानता था कि यदि अब परीक्षा छोड दी तो बाबूजी उसे फिर किसी भी सूरत में आगे नहीं पढने देगे।

जब तुषार बी ए में था, बाबूजी तभी उसे अपनी कंपनी में लगवाना चाहते थे। उन्होंने जोर देकर कहा था ' बी ए सी ए में क्या रक्खा है लल्ला बी ए प्राइवेट कर लेना .. ... वह तो साहनी चला गया वरना तुम्हें यह मौका कैसे मिलता। ' उसके जवाब न देने पर वे झुझला गए थे – 'अभी भी सोच रहे हो ? काम से लगो लल्ला काम से। दो - दो बहनों को पार लगाना है।'

वह स्तब्ध-सा रह गया था। क्या कह रहे है बाबूजी ? पढाई अधूरी छोड कर नौकरी करले, वह भी क्लर्क की। क्या होगा उसके कैरियर का, उसके सपनो का,

उसकी आशाओ का ? नहीं, यह नहीं हो सकता। अभी वह पढेगा, चाहे कुछ भी क्यो न हो। उसे अपना कैरियर बनाना है। क्लर्की करके घिसटते हुए जीना भी कोई जीना है।

कहावत है "अपने मन कुछ और है, कर्ता के कछु और"। और वह कर्ता के हाथो बुरी तरह ठगा गया। अब संभ्रमित सा वह अपने सपनों को खण्ड-खण्ड होते देख रहा था। तुषार ने सिर पकड लिया था। क्या करे वह . .. . क्या उन रास्तों को दुबारा तलाशे जो उसे उसकी मंजिल तक ले जाएँगे ? पर यह संभव कहाँ ? अब तो जो भी नौकरी मिले वही करनी है।

तुषार ने तो अपना माथा पकडा ही, लेकिन बाबूजी ने अपना माथा ठोक लिया – 'कर दिए न दो बरस बेकार । बाबू साहब प्रोफेसर बनेंगे . ..... कहा था नौकरी कर लो। पर कैसे करले क्लर्की। उन्हें तो अफसर बनना था ... .. जब से लगे होते तो छोरी के ब्या के लिए कुछ जुडता' वे निढाल से होकर ठंडी सांसे भरने लगे 'अपना-अपना भाग्य है। किसी का क्या दोष ? परमार के दोनो बेटे धंधे से लग गए और यहाँ इतना बडा जवान बेटा निठल्ला घूम रहा है . . ....

'बस भी करो कहने लगते हो तो कहे ही जाते हो।' बेटे की असफलता से दुखी माँ ने उसका पक्ष लिया। यह नहीं कि वह पति की पीडा को महसूस नहीं कर रही हो, पर जवान बेटे का निराशा से कुम्हलाया हुआ निरीह चेहरा देख कर वह भीतर ही भीतर कराह उठती थी। – 'सुबह का गया रात को घर लौटता है और आते ही तुम पीछे लग जाते हो।'

"मैं पागल कुत्ता हूं न जो उसके पीछे लग जाता हूं। सही बात कहता हूं वह तुम्हें भी बुरी लगती है वह सुबह का गया सांझ को आता है. हम तो सारी उमर जैसे घर में ही बैठें रहे न ?

' अब जाने भी दो क्यों बात बढाते हो ? '

' माँ, तुम चुप हो जाओ। उन्हें कह लेने दो। यदि मै आज बेकार न होता तो क्यों सुनना पडता

घर में तनाव का चँदोवा तन जाता है, जिसकी छाया मे मां बेटे भूखे ही सो जाते थे। तुषार की आँखो की नींद उड गई थी।, वह खटिया पर पडा खिडकी में से बाहर अँधेरे मे अपना भविष्य क्षत-विक्षत होते देखता रहता।

✪ ✪ ✪

मार्च के अंतिम दिन थे। दिन मे तेज हवाएँ चलने लगी थीं। पेडों की डालियाँ

खाली हो रही थी। जमीन मे बिछे पत्ते हवा के साथ फर-फर कर इधर से उधर हो रहे थे। विचार-मग्न तुषार वहीं मुडेर पर बैठा एक सूखी टहनी से पत्तों को इधर - उधर उछाल रहा था। उसके मन मे चिंता के बादल घुमड रहे थे। सारी आशाए टूट चुकी थीं। बाबूजी को रिटायर होने में बस चार महीने ही रह गए हैं। यदि तब तक उसे कोई नौकरी नहीं मिली तो क्या होगा ? कैसे होगी बहनों की शादी और कैसे विशाल पढ सकेगा ? बाबूजी तो उसे कैसे भी नहीं छोडेगे। वह क्या करे ? कैसे करे ? तनाव से उसके मस्तिष्क की नसें फटने--फटने को होने लगी। क्या वह घर छोड कर भाग जाए ? इसी उधेड - बुन में डूबा हुआ वह चला जा रहा था कि चिर-परिचित खिलखिलाहट सुन कर चौंक पडा। विनीता थी। वह पल भर को ठिठक गया पर तुरन्त दूसरी तरफ मुड गया। हीनता के घने अहसास ने उसे बढने से रोक लिया था। विनीता अलमस्त हिरणी की भांति हँसती - खिलखिलाती अपनी सहेलियों के साथ जा रही थी।

तुषार ने राहत की सांस ली। अच्छा हुआ जो विनीता ने उसे नहीं देखा। क्या तो उसका हुलिया हो रहा था - भूख से कुम्हलाया उडा-उडा सा चेहरा, अधमैली बिना क्रीज की पैंट और धूल भरे जूते।

वह उसे देख लेती तो अवश्य पूछती कि वह क्या कर रहा है इन दिनों ? क्या उत्तर देता वह ? कहता कि वह रोड इन्सपैक्टरी कर रहा है क्योंकि इस देश के नौजवानों के लिए इससे बढिया और कोई काम नहीं है।

प्रधानमंत्री कहते है – नौजवानों तुम देश के भविष्य हो, देश को तुम पर नाज है तभी न ये देश के भविष्य अपना आधा जीवन इधर - उधर सडकों की खाक छान कर बिता देते हैं

विनीता को देख कर उसे कुछ पल के लिए एक कोमल अनुभूति का अहसास हुआ था। लगा कि जैसे गुलाब के ढेरों फूल उसकी राह मे बिछे हैं, उन पर वह विनीता के हाथ में हाथ डाले चला जा रहा है

उसने तुरंत इस पल भर के अहसास को अपने मन से झटक दिया।

✪ ✪ ✪

दिन उतार पर था। मौसम में ऊमस थी। हवा एक दम बंद। तुषार ने रूमाल से चेहरा पोछा। पसीना पोंछते-पोंछते रूमाल काला हो गया था। वह खिन्न मन से इन्टरव्यू के लिए चला जा रहा था उसे सलैक्ट होने की जरा भी उम्मीद नहीं थी। वह तो इन्टरव्यू मे जाना ही नहीं चाहता था, पर सतीश ने उसकी हिम्मत बधाई थी। उसके मन मस्तिष्क मे सतीश के कहे शब्द बार - बार ठक - ठक कर रहे थे।

– तुषार, घबरा नहीं। इन्टरव्यू मे तू अवश्य जा। यदि तू सलैक्ट नहीं भी हुआ तो दूसरा रास्ता खोज। एक ही रास्ते पर कब तक चलेगा ?' पूछने पर कि दूसरा रास्ता क्या है ? उसने कहा बच्चों के लिए छोटा सा स्कूल खोल ले या कोचिंग क्लास लगा।

तुषार सोच मे पड गया था। क्या यह संभव है ? उसने सतीश के सामने अपनी शका रखी भी थी।

– हां, सभव क्यो नहीं है यदि कोई पूरी लगन से किसी काम में जुट जाए तो कोई कारण नहीं कि वह न हो।

– ' लेकिन, मैं अकेला कैसे कर सकूंगा ?

और फिर इन्टरव्यू ?

' इन्टरव्यू तो दे, सलेक्ट हो गया तो बहुत अच्छा रहेगा वरना दूसरा विकल्प यही है। वैसे भी तू लैक्चरर ही तो बनना चाहता था। कॉलेज मे नहीं, घर में क्लास लगा कर लेक्चर दे।' तुषार उसकी बात का एकदम उत्तर नहीं दे सका था। इतना ही कहा, – आज इन्टरव्यू दे दू फिर सोचूंगा।'

'अब ज्यादा सोच मत। सोचने का समय भी नहीं बचा है। यदि सोचता रहेगा तो यह मूल्यवान समय पंख लगा कर उड जाएगा। . . बस पक्का इरादा करके जुट ही जा काम मे।

तुषार ने सिर थाम लिया था। सिर में घनाधन हथोडे चल रहे थे। क्या सतीश ठीक कह रहा है ? कॉलिज मे भी मैं क्लास लेता। अपने घर में कोचिंग क्लास क्यों नहीं लगा सकता हिम्मत तो करनी ही पडेगी आज अकेला हूं, कल कोई दूसरा भी साथी मिल जाएगा। मुझे तुरन्त निर्णय करना चाहिए

अब तक वह स्वप्नों की दुनिया में घूम रहा था। ऊँची नौकरी - कार - कोठी के स्वप्न देख रहा था। परन्तु जीवन की वास्तविकता बडी कठोर होती है, सपनो की काल्पनिक दुनिया से बिल्कुल अलग। मुझे इसी कठोर वास्तविकता में रहना है।

थैंक यू सतीश तुमने मेरी आँ[illegible] पडा पर्दा [illegible] मेरा मार्ग दिखा दिया। अब मै इसी रास्ते पर चलूंगा [illegible] रहा [illegible] को अपने निर्णय से अवगत करा दू।' वह [illegible]

मौन

रिक्शे मे लाउडस्पीकर द्वारा नगर में स्वामी जी के आगमन व संध्या चार बजे से नेशनल क्लब में उनके प्रवचन की सूचना दी जा रही थी। स्वामी विरूपानद के प्रवचन का आयोजन नागरिक प्रतिनिधि सभा ने किया था।

चार बजते-बजते नेशनल क्लब का सभागार पूरी तरह भर गया। स्वामी विरूपानंद उच्च कोटि के विद्वान हैं। विदेशों तक उनकी प्रसिद्धि है। वेदों और पुराणों का उन्होनें गहन अनुशीलन किया हुआ है। अत: उन्हें सुनने के लिए अनेक विद्वान एवं जिज्ञासु वहाँ आए हुए थे। मौन-व्रत के ऊपर स्वामी जी का भाषण चल रहा था – 'मनुष्य को शक्ति के संचयन एंव साधना की सफलता के लिए प्रतिदिन नियम से मौन रखना चाहिए. . आध्यात्मिक व मानसिक उन्नति का यह एक मुख्य सोपान है .. .. मौन रहने से अन्तश्चेतना की उच्चतम वृत्तियों का विकास होता है, ध्यान में एकाग्रता बढती है .. ..'

अन्दर बच्चो का प्रवेश वर्जित था। बच्चों को साथ लेकर आने वाले स्त्री–पुरुषों को बाहर ही रोका जा रहा था। सच ही तो है। ऐसे आध्यात्मिक प्रवचनों मे बच्चों का क्या काम ?

अन्दर पूर्ण शान्ति थी। स्वामीजी की ओजस्वी वाणी हॉल में गूंज रही थी – 'मौन का अर्थ है – संपूर्ण मौन। केवल चुप रहना ही मौनव्रत नहीं होता है। यह नहीं कि वाणी पर तो रोक लगा ली पर, मन चलायमान है, हाथ–पैर क्रियाशील हैं . .. .. मौन की साधना में मन, वचन और कर्म सभी को अनुशासित करना

आवश्यक होता है, तभी इस व्रत की सफलता है . ' वह पीछे की पंक्ति मे बैठी दत्तचित स्वामी जी को सुन रही थी। स्वामी जी की प्रसिद्धि सुन कर ही वह यहाँ आई थी। सोचा कि शायद स्वामी जी का प्रवचन सुन कर उसके मन की अशान्ति कुछ कम हो जाए। पर नहीं हुई। स्वामी जी की बातों से उसे जरा भी संतोष नहीं हुआ। उसकी बुद्धि उन बातो को स्वीकार नहीं कर पा रही थी। यदि मौन रहने से सिद्धि या उपलब्धि प्राप्त होती है तो उसे अब तक कुछ भी उपलब्धि क्यो नहीं मिली? उसका मन तो अब पहले से भी अधिक अशान्त रहने लगा है। पिछले कई महीनों से वह चुप--चुप ही रहती है। बात करे भी किससे ? अनादि तो बस दो टूक काम की बात करते हैं। वह सारा दिन मुँह सीकर बैठी रहती है। लेकिन इस तरह वह अन्दर ही अन्दर घुटती जा रही है क्या यह भी कोई जीवन है, न हँसी न खुशी न कोई उमंग न किसी तरह का उल्लास। अब तो उसे अपना अस्तित्व ऐसा लगने लगा है जैसे वह पत्थर की जीवित प्रतिमा हो।

उसका मन अतीत के बंद दरवाजे की दरार मे झांकने लगता है – जहाँ एक लडकी हँसी से दोहरी हुई जा रही है। माँ पीछे-पीछे चिल्ला रही है – अरी नीरू, सुनती क्यो नहीं दो मिनिट काम की बात नहीं सुनेगी। बस सारे बखत खिलखिल-खिलखिल। जब देखो हिरनी-सी कूदती रहेगी . . . . कित्ती बार कहा कि धीरे चला कर अब तू बच्ची नहीं है।' माँ की बात सुन कर वह और दूनी हँसने लगती, हँसती ही चली जाती। वह जितना हँसती, माँ की बडबडाहट उतनी ही बढती जाती थी।

पर अब उसकी वह हँसी जैसे किसी खोह-खंदक में जा छुपी है, चाहने पर भी होठों पर खिलती मुस्कान नहीं आती है। हँसती मुस्कुराती आँखें हर समय एक गहरी अनकही उदासी में डूबी रहती हैं। माँ सच ही कहा करती थी – 'लल्ली, अभी तेरी समझ मे नहीं आ रहा है, पर ब्याह के बाद तुझे सब समझ में आ जाएगा। लडकियों का बात बे--बात हँसना-बोलना, हर वक्त कूदते फिरना अच्छे लक्खन नहीं हैं।' उनका कहा हुआ शत-प्रतिशत सच निकला। बात-बात पर उसका खिलखिलाना किसे पसन्द आया ?

अनादि के गंभीर स्वभाव के कारण उसे अपनी हँसी पर ब्रेक लगाना पडा। क्यों कि वे भी हमेशा उसे माँ की टोन मे टोकते रहते थे – 'यह क्या हर बात पर बच्चों की तरह खी-खी करती रहती हो.... . ..कुछ गंभीरता तो होनी ही चाहिए।' माँ की तरह ही उनकी बात पर भी वह हँसती रहती थी, इतना हँसती कि पेट में बल पड जाता। उन दिनों तक उसकी चुलबुलाहट जरा भी कम नहीं हुई थी। अनादि पढ रहे होते तो वह आकर किताब छीन लेती थी, लिख रहे होते तो पैन छीन लेती – 'क्या हर समय बस पढते रहते हो . . . . देखो कितना अच्छा मौसम है और तुम यहाँ स्टडी मे छुपे बैठे हो। आओ चलो बाहर लॉन मे बैठेंगे। चिडियों का गाना सुनेंगे, हवा से बातें करेंगे . . वह गुनगुनाने लग जाती – 'एरी पवन, कहाँ ढूंढे

तुझे मोरा मन ....' अनादि एकदम भड़क जाते – 'यह क्या बचपना है ?' और कुर्सी के हत्थे पर रक्खा उसका हाथ झटक देते – 'तुम्हीं करो ये बचकानी हरकतें, मुझे काम करने दो।' नीरू एकदम अप्रतिम हो जाती, उसकी प्रसन्नता, उसकी हँसी विलुप्त हो जाती।

स्वामी जी का प्रवचन समाप्त हो चुका था। इस समय लोग प्रश्न पूछ रहे थे। एक ने पूछा – 'संपूर्ण मौन का क्या अर्थ है ?'

– 'मौन के समय मन, वचन, कर्म की अकर्मण्यता और आत्मचिंतन'

– 'यही संपूर्ण मौन है।'

–'लेकिन स्वामी जी, आत्मचिंतन भी तो मन की क्रिया ही है ?'

– 'हाँ है .... लेकिन धीरे-धीरे मन को साधने से इससे भी मुक्ति मिल जाती है और मन एक लक्ष्य पर टिक जाता है। .... इस साधना से आत्मिक और शारारिक ऊर्जा की वृद्धि होती है ....फिर भी यह एक कठिन साधना है। इसके लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्कता हैं.... . ....'

एक अन्य प्रश्न के उत्तर में उन्होनें कहा – 'मौन अपने आप कभी खँडित नहीं होता है। अपने अन्तर की अभिव्यक्ति की उत्कटता के कारण अथवा मन की चंचलता के कारण मनुष्य स्वयं अपना मौन भंग करता है.... इसीलिए पहले इधर-उधर भागते मन को स्थिर करो। बिना इसके मौन व्यर्थ है। जैसे तुम चुपचाप बैठ तो गए पर तुम्हारा मन जमीन–आसमान के कुलाबे मिडाने में लगा है। यह मौन साधना नहीं है। इसका विशेष लाभ नहीं होता। क्योंकि मन की क्रिया से शक्ति का क्षय तो निरन्तर होता रहता है ... ...मौन रहते हुए अपने मन को शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए....., ...'

नीरू अन्दर ही अन्दर झुंझला उठी – उंह, सभी एक सुर में बोलते हैं। पता नहीं, ये आध्यात्म वाले जीना क्यों नहीं चाहते ? जाने इन लोगों में जीवन का उल्लास और उमंग क्यों नहीं होती ? एक ही तरह की बात करते हैं – मौन रहो, साधना करो, मन को एकाग्र करो। सब फालतू बाते हैं। हर आदमी ये साधना कहां कर सकता है ? यह जानते हुए भी सब यही उपदेश देंगे । कर्मो से पलायन, जीवन से पलायन। यह क्या स्वाभाविक है ? स्वंय भगवान कृष्ण ने गीता में कर्म का महत्व बताया है। पर ये स्वामी जी निष्क्रिय बैठने के लिए कह रहे हैं । क्या मनुष्य का जन्म निष्क्रिय बैठ कर केवल चिन्तन, मनन और साधना करने के लिए होता है ? – इस तरह के अनेक तर्को-वितर्कों से वह अन्दर ही अन्दर जूझ रही थी। नीरू निश्चय नहीं कर पा रही थी कि स्वामी जी की बाते कितनी ठीक हैं ? उसकी इच्छा हुई कि स्वामी जी से पूछे यदि चुप रहने को ही मौन रहना कहते हैं तो उसका चुप रहना साधना हुई या नहीं ?.. . .. पर नहीं, उसका मौन रहना साधना कैसे हो सकती है ? क्योंकि

उसका मन तो पलभर के लिए भी स्थिर नहीं होता है। वह तो वर्तमान की ऊसरता से घबरा कर बार-बार अतीत की हरियाली में भटकने लगता है। नीरू जैसे-तैसे उसे खीच कर वर्तमान में लाती है, परन्तु रस्सी तोडे पशु की भांति वह फिर भाग जाता है।

नीरू माँजी के बारे में सोचती है – वे भी सदा चुप-चुप ही रहती हैं। उसने उन्हें कभी खुलकर हँसते नहीं देखा। हमेशा सधे-संयत स्वर में नपी-तुली बातें। न क्रोध, न आवेश, न खुशी, न रंज। एक बार उसके बहुत पूछने पर उन्होंने बताया था कि अनादि के पापा को ऐसे रहना ही पसंद था। अत: उन्होंने अपना स्वभाव उनके अनुकूल बना लिया। अब वही उनका स्वभाव बन गया है। अपने मन को मार कर दूसरे की इच्छानुसार अपना स्वभाव आमूल–चूल बदल डालना अत्यन्त कठिन होता है। वह स्वय भुक्तभोगी है। यह भी एक तरह की साधना ही है।

नीरू माँजी से ढेर सारी बातें करना चाहती थी – उनके दुख-सुख की, अपने दुख-सुख की। घर में और था ही कौन जिससे वह बात करती ? ले दे कर तीन प्राणी–अनादि, माँजी और वह स्वंय। उसके ससुर उसके विवाह के दो वर्ष बाद स्वर्गवासी हो गए थे। अनादि का स्वभाव भी अपने पापा जैसा था – धीर-गंभीर।

वस्तुत: पिता–पुत्र दोनों दर्शनशास्त्र के व्याख्याता थे। हँसी-खुशी, लोक-व्यवहार से उनका दूर-दूर का वास्ता न था। खाली समय में दोनों बाप-बेटे दर्शनशास्त्र की पुस्तकों मे डूबे रहते थे – करोडों वर्ष पहले जब ब्रह्माण्ड में केवल शून्य ही था . . . ब्रह्मा जी का आविर्भाव हुआ, उन्होने सृष्टि की रचना आरम्भ की। आज की इस सृष्टि की नहीं। करोडों वर्ष पूर्व की सृष्टि जो न जाने कब की नष्ट भी हो चुकी है। परन्तु विष्णु की नाभि में स्थित कमलनाल पर बैठे हुए ब्रह्मा जी अब भी निरन्तर सृष्टि की रचना में संलग्न है। यह सारी सृष्टि ब्रह्म स्वरूप ही है – 'एकोऽह्म् ब्रह्मास्मि' और ऐसी न जाने कितनी ही गूढ बातें जो उसकी समझ से परे थीं।

नीरू ने बी०ए० म्यूजिक में किया था। उसे नृत्य में भी रूचि थी। तभी वह दिनभर थिरकती रहती थी – ता–ता – थेई–थेई–धिक्–धिक्–थेई। परन्तु विवाह के बाद उसके पैरों की थिरकन मन्द होते – होते एकदम रूक गई थी। अब कैसा तो नाचना और कैसा थिरकना ? जब नृत्य सीखा था तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि भविष्य में इतने नपे-तुले कदमों से चलना पडेगा। अपना मन लगाने के लिए वह कई बार अनादि की पुस्तकों का अवलोकन करती, पर हर बार वह आत्मा-परमात्मा के झमेले में उलझ कर रह जाती थी।

ईश्वर ने उसे मातृत्व–सुख से भी तो वंचित रखा है। बच्चा होने से जीवन में कुछ तो सरसता होती. . . .... परन्तु शायद बीज का निर्माण किसी आल्हादकारी क्षण मे ही होता है। प्रभु ही जाने उसे वह क्षण क्यो नहीं नसीब हुआ ? मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियो से तो वे अलग नहीं रहे, फिर भी .

अनादि उसे समझाया करते — देखो, अब तुम छोटी नही हो। जवान विवाहिता स्त्री हो, इसलिए यू मस्ट बिहेव लाइक ए सोबर वुमन। माँ को नहीं देखती हो, कैसे शान्तभाव से रहती है ? उनके पास बैठा करो, उनसे सीखने का प्रयत्न करो। मेरी लाइब्रेरी मे से किताबे पढा करो।'

वह चुपचाप सुन लेती। यद्यपि छटपटाती कि वह इन महाबुद्धिमान से यह पूछे —क्या तुमने मनोविज्ञान पढा है ? यदि नहीं पढा है तो पढो। माँ के अन्दर छुपी पीडा को समझो । केवल ऊपर से चुप और शान्त रहना सुखी होने का प्रमाण नहीं है . .. मुझसे कहते हैं कि माँ को नहीं देखती। तुमने माँ को कहाँ देखा ? कहा समझा ? उसका मन विद्रोह करने लगता। मनोविज्ञान तो नीरू ने भी नहीं पढा था फिर भी वह अन्तर के भावों का मूल्य समझती थी।

शनै. शनै वह इस घर के वातावरण के अनुकूल चुप रहने लगी, और चुप से चुपतर होती चली गई। माँजी का अधिकतर समय पूजाघर मे बैठकर माला फेरने में व्यतीत होता था। और नीरू रसोई पानी और घर के काम-काज से निवृत होकर लॉन मे बैठी-बैठी शून्य में ताका करती थी अथवा लाइब्रेरी में बैठ कर किताबो के पन्ने पलटती रहती थी।

उन्हीं दिनों सुना कि स्वामी विरूपानन्द नगर मे पधारे है। यद्यपि उसे आध्यात्म में तनिक भी रूचि नहीं थी तथापि न जाने किस आकर्षण मे वह स्वामी जी का प्रवचन सुनने के लिए तत्पर हो गई थी। वह माँजी के साथ ही जाना चाहती थी। परन्तु उस दिन वे कुछ अस्वस्थ-सी थी, अत. नीरू को अकेले जाना पडा।

हॉल मे अब बहुत कम लोग रह गए थे। स्त्रियों की पॅक्ति खाली हो गई थी। वह अकेली बैठी थी।

— 'बाई, तुम कुछ पूछना चाहती हो ?' उसे अब तक बैठा देख कर स्वामी जी ने पूछा तो वह एकाएक सकपका गई। क्या पूछे वह ? उसने अभी तक कुछ सोचा ही नहीं। मन में शंकाएँ तो बहुत हैं किन्तु संदेह भी है कि स्वामी जी उसकी समस्या का समाधान नहीं कर सकेंगे ? वैसे भी यहाँ सब के बीच में वह कुछ नहीं पूछना चाहती। यह उचित भी नहीं होगा। अनादि को भी अच्छा नहीं लगेगा। यूं भी स्वामी जी ने स्पष्ट कह ही दिया कि अपने मन को शान्त और स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए — अब उसे यही करने का प्रयत्न करना है। जरा सी देर मे इतने सारे प्रश्न—उत्तर उसके मन मे घूम गए।

उसने नकारात्मक गर्दन हिला दी और चुपचाप हॉल से बाहर निकल आई। ●

कर्ज

शुचि सागर तट पर बैठी दूर क्षितिज में अस्त होते हुए सूर्य को निहार रही थी। पश्चिमॉचल मे जाते अरूण की प्रभा से सागर की लहरें रक्तिम स्वर्णिम हो रहीं थी। और वह टकटकी बॉधे अम्बुधि में घुली लालिमा को देखे जा रही थी। उसके पाँवो के पास हहराते हुए सागर की लहरें पछाड खा रही थी। जिससे उसकी साडी नीचे से भीग कर रेत मे लिथड गई थी। ऊपर नीले आकाश में पक्षियों की पातें अपने बसेरे की ओर उडी जा रहीं थीं। थोडी दूर पर कुछ बच्चे समुद्र की उछलती लहरों से खेल रहे थे। कहीं से बहता हुआ एक नारियल आ गया था। लहरे उसे बार-बार किनारे पर उछालती और बालक उसे उठा कर बार-बार दूर पानी में फेक देते, फिर ताली पीट-पीट कर हंसते। लहरें नारियल को पुन: किनारे पर ला पटकतीं थीं। यही क्रम चल रहा था। केवल चड्डियाँ पहने नंग-धडंग बालक दुनियाँ के गमों से दूर इस क्रीडा मे संलग्न थे।

पर शुचि इस सब से बेखबर अपने ही अर्न्तलोक में डूबी बैठी थी। उसके भाग्याकाश का सूर्यअस्त प्राय था। वह उसी चिंता में निमग्न थी। प्रकृति के साथ सामान्यीकरण उसके लिए नया नहीं था। महानगर मे रहने के बावजूद वह प्रकृति के साथ तादात्म्य रखती थी। वह प्रकृति के लिए बावली जो थी।

ऐसा ही था वह प्रकृति दीवाना कवि तरूण। दूर सागर तट पर बैठा-बैठा उस अनमनी युवती को निहारता रहता था तथा उसकी मूक वेदना को शब्द बद्ध करता रहता था –

अंजता की मूर्ति सी,
शापित देव कन्या,
मौन, निश्चल निर्विकार।
क्षुब्ध अन्तर मे
रचा पीडा का संसार।

होटल के कमरे मे अकेला पडा प्रकाश विवशता से खिडकी में से अपनी पत्नी को देख रहा था। वह बेहद मायूस था। कौन दिन ढले से शुचि सागर तट पर जाकर बैठी है। अब अँधेरा घिर आया था। होटल बिजली से जगमगा उठा था। परन्तु

शुचि को अन्दर आने का बिल्कुल होश नहीं था। अब तो उसकी आकृति भी स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही थी। उसने पुकारा– 'शुचि अन्दर आ जाओ।'

लेकिन उसकी क्षीण आवाज शुचि तक नहीं पहुँची। विचारो मे लीन शुचि को क्षणमात्र के लिए भी तो अहसास नहीं हुआ कि प्रकाश उसे पुकार सकता है। वह उसी तरह शान्त, निस्तब्ध, निश्चेष्ट बैठी रही।

– मेम साब, आपको साब बुलाता है।' होटल के बैरे ने आकर कहा।
.....................तो वह चौक पड़ी। निमिषमात्र में यथार्थ के धरातल पर आ गयी।

– 'ओह । एकदम अँधेरा हो गया।'

– 'जी मेम साब' बैरे का संयमित उत्तर था।

वह थकी – थकी सी चलने जगी। वह अपने को बेहद थका टूटा महसूस कर रही थी। उसे लग रहा था जैसे वह मीलों चल कर आई हो। घंटो के मानसिक संघर्ष ने उसे भीतर से तोड दिया था।

प्रकाश को इतनी देर अकेला छोडने की उसे मन ही मन ग्लानि भी हो रही थी। उसके अन्दर एक अपराध बोध भर गया। प्रकाश को दवा व रस देने का समय निकल चुका था।

– 'अच्छा सोमदत्त तुम यहाँ पर कब से काम करते हो ?' चलते–चलते यह अचानक बैरे से निरर्थक प्रश्न कर बैठी।

– 'जी जब से होटल बना है, हम तब से यहीं काम करता है।'

– 'क्या तुम यहीं के रहने वाले हो ?'

– नहीं मेमसाब, हम आसाम साइड का है। हमारा बाप टी गार्डन में काम करता है।'

– ' तो तुम यहाँ कैसे आ गए ?'

– हमारा बाप ने दूसरी शादी बना लिया। दूसरा माँ हमको बहुत तंग करता, तब हम भाग कर कलकत्ता आ गया। वहाँ हमने बहुत साल तक बूट पॉलिश किया। फिर एक दिन किस्मत हमको यहाँ ले आया।'

' ओह ! अच्छा', शुचि ने एक भरपूर नजर सोमदत्त पर डाली। काला बलिष्ट युवक जिसका सारा जीवन अभावों और संघर्ष में ही बीता लगता था। पर दुख या चिंता की छाया भी उसके चेहरे पर नहीं थी। संभवत उसने यह अपना भाग्य समझ कर स्वीकार कर लिया था।

और शुचि ! जिसे पति की असाध्य बीमारी के अतिरिक्त अन्य कोई दुख न था। वह न तो परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना पा रही थी और न ही अपने को

उसके अनुसार ढाल पा रही थी।

होटल आ गया था। एक अतिम दृष्टि सोमदत्त पर डाल कर शुचि अपने कमरे मे आ गई।

— 'आपने मुझे बुलाया ?' उसने सधे स्वर से पति से पूछा।

— हाँ शुचि, अभी मैं मरा नहीं हूँ। तुम मेरी मौजूदगी बिल्कुल ही भूल कर घटो से बाहर बैठी हो।' प्रकाश ने बडी कटुता से कहा।

' आई एम रियली वैरी सॉरी, आगे से ध्यान रखूंगी। मैं अभी आपके लिए रस निकालती हूँ।' बहुत ही सधे पर ठंडे स्वर में उसने कहा। अपने स्वर का ठंडापन उसे स्वय ही सालने लगा था। वह कुछ सकापका भी गई थी। प्रकाश बेहद निराशा और मायूसी से उसे देख रहा था।

शुचि चुपचाप मौसमी का रस निकालने लगी। उसका मन खिन्न हो गया था। वह अपनी लापरवाही पर लज्जित तो थी लेकिन वह क्या करे ? इस कमरे में उसका दम घुटता है। उसे लगता है कि अगर वह कमरे के अन्दर अधिक देर रही तो निश्चित रूप से अपना मानसिक संतुलन खो बैठेगी। तभी तो वह प्रकाश का काम करके या जब वह नींद की दवा लेकर सो जाता है तो वह कमरे से निकल जाती है।

— 'क्या सचमुच तुम मुझसे बिल्कुल ऊब गई हो ?' प्रकाश बडी कठनाई से उठ कर शुचि के पास आ खडा हुआ था। लेकिन इतने मे ही वह हाँफने लगा था। उसके सामने धरती आकाश घूमने लगे थे। उसने शुचि का सहारा ले लिया। कच्चे ठूँठ का कमजोर सहारा ! उसे लग रहा था कि जैसे वह कच्चा ठूँठ उसकी पकड से छूट जाएगा और वह बिल्कुल बेसहारा होकर गिर जाएगा। एक पल के लिए असुरक्षा की भावना से वह घबरा गया।

तभी शुचि ने उसे सहारा देकर धीरे से बिस्तर पर लिटा दिया।

— 'आप उठ कर क्यो आए ? चुपचाप लेटे रहिए और व्यर्थ की बातें न करिए।'

प्रकाश ने शुचि का हाथ पकड कर उसे अपने पास बिठा लिया — 'तुम इसे व्यर्थ की बात कह रही हो? मै घंटो से किस सघर्ष मे उलझा हुआ हूं यह तुम्हें कैसे बताऊं ?' प्रकाश हाँफने लगा था।

— प्लीज, आप चुप हो जाइए। डॉक्टर ने आपको अधिक से अधिक आराम करने को कहा है।' शुचि ने अपनी हथेली प्रकाश के मुहँ पर रख दी। दो मिनिट उसके पास बैठ कर फिर रस निकालने के लिए उठ गई।

— 'ओह, शुचि', प्रकाश ने पीडा से अपने होंठ भींच लिए — 'मै जानता हूं तुम मुझसे बहुत दूर जा चुकी हो। अब तुम्हें मेरा तनिक भी ध्यान नहीं रहता है।' प्रकाश

ने अपनी ऑखे बन्द कर ली। बंद ऑखो की कोर से दो बूंदे ढुलक गई।

– 'आपको यह भ्रम है। मुझे हमेशा आपका ध्यान बना रहता है। एक पल के लिए भी आप मेरे मन से नहीं हटते।'

शुचि ने रस फीडिग कप में डाल कर प्रकाश के होंठो से लगा दिया था। उसने आज्ञाकारी बालक की भाँति चुपचाप रस पी लिया।

प्रकाश के सो जाने पर शुचि बेचैनी से कमरे में टहलती रही। वातावरण मे गहन चुप्पी छाई हुई थी। कहीं कोई आवाज नहीं। सिर्फ सन्नाटा ! भयानक सन्नाटा!

✪ ✪ ✪

मंदिर का विशाल प्रांगण दर्शनार्थियों की भीड से भरा था। कतार मे बँधे लोग दर्शन करने अन्दर जा रहे थे। अन्दर तिल धरने को जगह नहीं थी। लोग एक दूसरे के कंधे पर उचक कर त्रिमूर्ति के दर्शन कर रहे थे। घंटे घडियालो के नाद से और भगवान जगन्नाथ की जयकार से देवालय गूँज रहा था।

शुचि मंदिर के बाहर एक प्राचीर पर बैठी मौन भाव से यह सब देख रही थी। भगवान जगन्नाथ के चरणों में शान्ति ढूंढने आई शुचि ने आज तक मूर्ति के दर्शन नहीं किए थे।

विचारमग्ना शुचि की तन्द्रा भंग करते हुए एक अपरिचित आवाज उसके कानों में पडी – 'क्या मै यहाँ बैठ सकता हूं ?'

उसने चौंक कर देखा – खादी का कुर्ता पायजामा पहने एक भद्र युवक उससे पूछ रहा था। वह एक तरफ सरक गई –'बैठिए। –'

' मैं तरुण हूँ – साहित्याकाश का एक धूमिल नक्षत्र, जिसका प्रकाश स्वंय उसको भी प्रकाशित नहीं कर पाता फिर भी वह टिमटिमाता रहता है क्योंकि यही उसकी नियति होती है। भगवत् प्रेरणा से कुछ तुकबन्दी कर लेता हूँ।'

शुचि असंमजस में थी। अपनी लम्बी लम्बी बरौनियों को उसने कवि के चेहरे पर टिका दिया। यह सब कहने–बताने का क्या अभिप्राय है ? मैंने तो परिचय जानना नहीं चाहा था।

वह कवि था अत नयनों की मूक भाषा समझ गया।

– 'आप प्रतिदिन जलधि तट पर बैठी सीपियों और बालू से खेलती रहती हैं और मै दूर बैठा आपके भावों को शब्दों में बाँधने का दुस्साहस करता रहता हूँ।'

शुचि चौंक पडी – 'क्या ? क्या कह रहे हैं आप ? क्या सचमुच आपने मेरे ऊपर कुछ लिखा है ? घबरा कर शुचि ने एक साथ ढेर सारे प्रश्न कर दिए... . .

'आप संभवत यह नहीं जानते कि मैं विवाहिता हूँ और मेरे पति भी मेरे साथ यहाँ आए हुए हैं   क्या मेरे अतिरिक्त कविता करने के लिए आपको दूसरा विषय नहीं मिला ?

– 'देखिए आप थोडा शान्त हो जाइए। एकाएक आप बहुत उद्विग्न हो उठी हैं। आपके कुछ प्रश्न निहायत बचकाने हैं अत उनका उत्तर देना व्यर्थ है.......खैर छोडिए। आप विवाहिता हैं यह मैं कैसे नहीं जानूंगा ? आपकी माँग में प्रमाण मौजूद है   किन्तु आपके पति ? उनको कभी आपके साथ नहीं देखा।'

एक गहरी निश्वास शुचि के मुँह से निकल गई –'वे बीमार हैं। होटल के कमरे मे लेटे रहते हैं।'

' ओह '

..

' क्या कोई असाध्य रोग है ? '

उसकी झील सी ऑखों में नमी उतर आई थी। सावधानी से अपने रूमाल से ऑखे पोछ लीं। उसके दुखते जख्म को इस अपरिचित ने अनजाने में छू दिया था।

तरूण से उसकी बेचैनी छिप न सकी – आई एम वैरी सॉरी .. मैंने आपको परेशान कर दिया।

शुचि के लिए भावावेग संभालना कठिन हो गया था। अत वह नि शब्द वहाँ से उठ कर चली गई।

– हे जगत के नाथ। मैं तुम्हारे द्वारे पर शान्ति प्राप्त करने आई थी, परन्तु यहाँ आकर मै अधिक ही अशान्त हो गई हूँ .हे प्रभु, तुम मुझे चिरशान्ति क्यों नहीं दे देते ?

✪ ✪ ✪

प्रकाश का कष्ट बढ गया था। उसका चेहरा और काला पड गया था। लगता था कि वह अब कुछ ही दिन का मेहमान है।

डॉक्टर ने कहा था कि जिस तरह ये खुश रह सकें, इन्हें खुश रक्खा जाय। किन्तु शुचि के यन्त्रवत् ठंडे व्यवहार से उसे अतीव कष्ट होता था।

रात मे उसका दर्द बहुत बढ गया। वह सारी रात पीडा से छटपटाता रहा। उसे किसी भी दवा से आराम नहीं मिल रहा था। नींद की दवा भी बेअसर हो गई थी।

– 'शुचि अब मैं नहीं बचूंगा।'

– 'क्यों अशुभ बोलते हो।'

– 'नहीं शुचि नहीं। मुझे मत रोको। मुझे बोलने दो। मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मैंने तुम्हारे साथ बहुत अन्याय किया है। भगवान इसीलिए मुझे इतनी कष्टदायक मौत दे रहा है ' इतना कहते-कहते वह हॉफने लगा था। यन्त्रणा से उसका चेहरा विकृत होने लगा।

शुचि घबरा गई। क्या करे वह ? वह प्रकाश के पास बैठ कर उसकी छाती सहलाने लगी। शुचि के सामीप्य से प्रकाश को कुछ राहत मिली। थोडी देर में उसकी पलकें मुँदने लगीं। वह शुचि की गोद में सिर रख कर सो गया।

✪ ✪ ✪

– 'नहीं तरूण नहीं, तुम मेरे अन्दर की गहराइयों में झाँकने का प्रयत्न न करो।' समुद्र के किनारे बालू के महल बनाती हुई शुचि ने तरूण से कहा।

– 'मैं आपको क्या कह कर संबोधित करूं नहीं जानता आपका दुख कुछ हल्का कर सकूं इसी अभिप्राय से मैंने यह पूछने की धृष्टता की थी।

शुचि का पीला उदास चेहरा आँसुओ से तर हो गया था। बालू का महल बना ही नहीं कि ढह गया था।

– 'भगवान लडकी तो दे देता है किन्तु न जाने उसके पिता को पैसा क्यो नहीं देता ? लडकी का बाप गरीब क्यो होता है ?

' मेरे पिता प्रकाश के पिता के आसामी थे। व्यापार में लगाने के लिए पिताजी ने प्रकाश के पिता से कर्ज लिया था। व्यापार में उनको जबरदस्त घाटा हो गया। धन डूब गया फिर ! फिर तो मैं ही बची थी। कर्ज उतारने का एकमात्र साधन। कर्ज उतार दिया गया। न जाने यह पुरूष समाज औरत को इन्सान कब समझेगा? आदिकाल से आजतक इतिहास की पुनरावृत्ति ही होती रही है।'

एक लम्बी आह भर कर शुचि ने फिर कहना प्रारम्भ किया – 'युधिष्ठर जैसे प्रतापी, सत्यवादी, धर्मप्रिय राजा ने ही जब अपनी स्त्री को दाँव पर लगा दिया, फिर मेरी तो हस्ती ही क्या थी– कर्ज में डूबे एक साधारण लाचार आदमी की लडकी .

' प्रकाश शुरू से ही मुझ पर मोहित था। इसलिए उसने पिताजी से कह कर मेरे पिताजी को कर्ज दिलाया था-- पिताजी यह तो जानते थे कि प्रकाश को कोई रोग है।' किन्तु वे यह नहीं जानते थे कि वह बीमारी कैंसर है।' इतना कह कर शुचि फूट-फूट कर रोने लगी। तरूण उसके पास नि शब्द, मौन बैठा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि कैसे वह शुचि को धीरज बँधाए।

'तरूण, मैं लुट गई। कहीं की न रही। मेरे लाख विरोध करने के बावजूद मेरे पिताजी ने छोटे भाई-बहनों का वास्ता देकर, घर की सुख-शान्ति का वास्ता देकर, मुझे प्रकाश के साथ बाँध ही दिया। अपने घर का सुख बचाने के लिए मेरे सुख क

जीवन को दॉव पर लगा दिया। मेरे अस्तित्व की, मेरे मूल्यो की, मेरी आस्थाओं की हत्या कर दी गई। और मैं विवश देखती रह गई। प्रकाश अमीर बाप का इकलौता लडका है। बडे से बडे डाक्टर का इलाज होता रहा। इलाज के लिए हम लोग अमरीका तक हो आए है और अब अन्त में मैं भगवान की शरण मे आ गई हूँ। यह सोच कर कि जो कुछ अच्छा-बुरा होना होगा इस भगवान कहलाने वाले निर्दयी के सम्मुख होगा ''

– मैं आपको कैसे सांत्वना दूँ ? समझ नहीं पा रहा हूँ आप साहस से काम लीजिए। ईश्वर पर विश्वास रखिए। यहाँ भगवान के दरबार में आप इतनी निराश क्यो हो रही हैं प्राचीन काल में एक सावित्री हुई थी, वह मृत्यु के मुँह से अपने पति को वापस ले आई थी '

– 'जानती हूँ उस उपाख्यान को' एक फीकी सी मुस्कान के साथ शुचि ने कहा।

– 'संभव है आज भी ऐसी सावित्री कहीं न कहीं अवश्य होगी . . लेकिन मै सावित्री नहीं हूँ, तरुण मैं सावित्री बन भी नहीं सकती' उसकी हिचकी बँध गई। घुटने मे मुँह छिपा कर वह हिलक-हिलक कर रोने लगी।

रूलाई का वेग थमने पर उसने चेहरा ऊपर उठाया। चेहरा वर्षा के बाद भीगी-भीगी प्रकृति जैसा हो रहा था।

–'कल रात प्रकाश की हालत बहुत बिगड गई थी। घर तार दे दिया है। रात तक घर वाले आजाएगे

अब मैं चलूं। कहीं प्रकाश जग न गए हों।'

तरूण जडवत् बैठा उसे अपलक देख रहा था जिस पर असमय ही पतझड आ गया था। गुलाबी चेहरा पीला पड गया था, सीप सी आँखो के नीचे काली झाँइयाँ पड गई थीं।

साँझ घिरने लगी थी। दूर क्षितिज में भुवन–भास्कर अपनी विश्वयात्रा पूर्ण करके जाने की तैयारी में थे। सागर की छाती पर हिलोलें मारती लहरे जैसे शुचि के साथ हुए अन्याय के प्रति आक्रोश प्रकट कर रहीं थीं।

शुचि चुपचाप अपने अंधकार पूर्ण भविष्य की ओर बढ रही थी। ●

ज़हर

मई की धूप पूरे सहन में पसर गई थी। हवा में सुबह से गर्माहट थी। ताजगी और ठंडक का नाम तक न था। इतनी देर हो गई थी, सीमा अभी तक दूध लेकर नहीं आई थी। पता नहीं क्या हो गया आज उसे। वह इंतजार कर रही थी कि दूध आए तो बच्चों को दे। वे स्कूल जाने के लिए तैयार हो चुके थे।

– 'ममी नाश्ता दो, बस आने वाली है। अभी तक दूध भी नहीं बनाया ?' शिरीष ने एक स्वर में हल्ला मचाना शुरू किया ।

– 'जल्दी दो न।'

घडी में साढे सात बज चुके थे। वह परेशान सी कभी बाहर कभी भीतर आ जा रही थी। पता होता तो रात को दूध रख लेती। क्यों दही जमाती ? इन लोगों को जिम्मेदारी का जरा भी अहसास नहीं होता। बिना कहे घर बैठ गई। अगर स्वंय को नहीं आना था तो भाई को ही भेज देती। वह बडबडा रही थी।

तभी घंटी बजी। महादेव था, दूध वाला। दूध लाया था। – 'आज तुम दूध कैसे लाए ? सीमा नहीं आई क्या ?'

– 'वह नहीं आएगी। जगन्नाथ गुजर गया न रात को।'

– 'अरे !' उसके मुँह से अनायास निकल गया।

– 'अच्छा। तभी.। बीमार तो था ही।'

– 'अपनी मौत उसने खुद ही बुला ली। पानी की तरह पीता था। यही जहर उसे ले मरा।

वह चुप रही। क्या कहती ? उसे पता था कि जगन्नाथ शराब बहुत पीता था।

इन दिनो वह मरणासन्न पड़ा है, यह भी सीमा ने उसे बताया था। फिर भी सुबह-सुबह इस खबर से वह खिन्न हो गई।

बच्चे जा चुके थे। आज उसका मन काम में नहीं लग रहा था। जगन्नाथ का पीला दुर्बल चेहरा बार-बार उसकी दृष्टि के सम्मुख घूम रहा था।

उस रात वह सीमा को लिवाने आया था। उनके यहाँ पार्टी थी, अत सीमा को जाने मे देर हो गई। रात ज्यादा हो गई थी। लडकी की जात। अकेली कैसे जाएगी सो लेने चला आया था। वह नीचे से ही आवाज लगा रहा था। अब नीचे से कौन सुनता उसकी आवाज। ऊपर घर में शोर-गुल हो रहा था। कैसेट प्लेअर बज रहा था। जगन्नाथ का खाँसी से जर्जर स्वर बार-बार जैसे टूट रहा था। बाप की खाँसी का स्वर सीमा पहचान गई थी। भागी बाहर की ओर।

उसने भी बाहर जाकर झज्जे से देखा था – कृशकाय देह में उभरा हड्डियों का कंकाल लुढकता-पुढकता सा जा रहा था। शराब के नुकीले पंजों ने उसे पूरी तरह जकड रक्खा था।

✪ ✪ ✪

उन दिनों वह एक नौकरानी की तलाश कर रही थी। उसकी पुरानी महरी जाने वाली थी। वैसे भी वह सारा काम नहीं कर पाती थी। बीमार भी रहती थी।

उस दिन वह झज्जे पर खडी थी तभी पहली बार उसके यहाँ सीमा आई थी।

– 'मुझे सामने वाली विमला भाभीजी ने भेजा है, आपके यहां काम करने के लिए।'

उसने उसे ऊपर से नीचे तक देखा-ग्यारह बारह साल की सांवली-सी वह किशोरी कमर पर से उघडी, बेहद मैली फ्राक पहने खडी थी। उसके काले पैरों पर मनों मैल थुप रहा था, जैसे वे कभी धोए ही नहीं गए हों। बाल उसके अलबत्ता करीने से कढे हुए थे। गोल चेहरे पर चमकदार आँखों में जिज्ञासा, विस्मय और अनुनय का विचित्र सम्मिश्रण था

– 'तुम काम करोगी ?'

– 'हाँ बीबी जी।'

– 'सारा काम कर सकोगी ?'

– 'जी'

लेकिन उसकी वेशभूषा देखकर वह सोचने लगी-यह कहाँ की बला आ गई? यह क्या काम करेगी ? पहले तो इतनी सी, दूसरे इत्ती गंदी। शिरीष और शिशिर तो इसे देखते ही चलता कर देगे। और ये ? इन्हें भी कब पसन्द आएगी यह नौकरानी।

अत उसने उसे टरकाना चाहा – 'नहीं भई, तुम से नहीं हो सकेगा। हमारे यहाँ काम ज्यादा है। हम सभी काम के लिए एक ही नौकरानी रखना चाहते हैं।'

– 'मैं आपका सब काम कर लूंगी। आप करवा कर तो देखिए।' वह काम करने के लिए इतनी आतुर लग रही थी कि अगर इसी समय कहा जाता तो वह तुरन्त काम में जुट जाती। – 'बीबी जी, मुझे रख लीजिए। मुझे काम की बहुत जरूरत है।' आजकल की आम नौकरानियों से अलग उसका स्वर आर्द्र था, और ऑखों में याचना थी।

तभी विमला का फोन आ गया – 'हलो केतकी, लडकी अच्छी हैं। मेहनती और ईमानदार है। तू रख ले। मैं दो महीने के लिए जा रही हूँ। वरना इसे कभी नहीं हटाती।'

केतकी सोच में पड गई। क्या करे, क्या न करे ? इस लडकी को रक्खे क्या ? इतनी गंदी। उसने कल्पना में अपनी नाक सिकोडी।

वह लडकी कुछ-कुछ उसके मन का भाव ताड गई थी। कहने लगी – 'आप चाहो तो मेरी माँ को रख लों। पर एक बात कहूँ, वह मेरे जित्ता काम नहीं कर पाएगी।'

केतकी आश्चर्य से उसे देखने लगी। यह जरा-सी छोकरी। कितना घमण्ड है इसे ! कहती है इसकी मां इसके जित्ता काम नहीं कर सकेगी। प्रकटत बोली - 'तू बहुत चतुर है छोकरी। बित्ता भर की तू तो मेरा सब काम कर लेगी, लेकिन तेरी मॉ नहीं कर पाएगी, क्यों ?'

– 'बीबी जी, बात यह है' वह कुछ हिचकिचाई, फिर निगाह नीची करके बोली – 'उसके पैर भारी है . इस पर रोज की मार-कूट। मॉ के बदन में इत्ती जान कहाँ है ?

– वह अवाक्। कैसे है ये लोग। खाने के लिए है नहीं लेकिन बच्चे !

– 'तुम कितने भाई-बहन हो ?'

– 'दो भाई हैं और हम दो बहनें। एक भाई गुजर गया।'

'इतने बच्चे हैं फिर तेरी मॉ को . .ची. . ची ची
उसने अपनी जीभ काट ली। इस बच्चा-सी लडकी से क्या कहने जा रही है।

— अभी तो छोटा भाई माँ का दूध पीता है। फिर जाने कैसे उसका पेट रह गया।'

उसकी बात सुन कर वह हतप्रभ हो गई। इस कच्ची उम्र मे यह ज्ञान। पर उसका यह सोचना गलत था। उम्र में कच्ची होने के बावजूद उसके चेहरे पर बालसुलभ कोमलता का पूर्ण अभाव था। और जो था वह असमय ओढा जिम्मेदारी से भरा बडप्पन था।

केतकी ने एक केला व नासपाती उसे लाकर दिया – 'ले यह खा ले।' उसे उस लडकी के ऊपर दया उपजने लगी थी।

वह संकोच से सिमट गई–'रहने दीजिए, बीबीजी।' – 'कोई बात नहीं, संकोच मत कर। ले,ले।'

लडकी ने फल फ्राक की झोली मे रख लिए।

– 'क्यों। खा क्यों नहीं रही ?'

– 'जी, घर पर खा लूंगी। छोटी बहन और भाइयों को भी दूंगी।'

केतकी का मन करूणा से द्रवित हो गया। इस गरीबी मे भी बहन भाइयों से इतना प्यार। अभाव में ही मनुष्य के त्याग की परीक्षा होती है।

हम अभिजात्य लोग जिस संसार में रहते हैं वहाँ बच्चों के लिए फलो के टोकरे भरे होते है, दूध–मेवा मिष्ठान किसी चीज का भी तो उन्हें अभाव नहीं होता। लेकिन वे जानते ही नहीं कि एक मे से आधा देना क्या होता है। और इस संसार से इतर भी एक संसार है वहाँ के बच्चे दूध फल की तो कौन कहे, चाय, रोटी भी बांट कर खाते हैं। उनकी थाली में भूख, गरीबी, बेकारी यही तो व्यंजन होते है।

अब केतकी ने तुरन्त निर्णय ले लिया। उसे एक बट्टी साबुन देकर कहा – 'साबुन से कपडे धोकर, अच्छी तरह नहा कर कल सुबह आ जाना।' लडकी का सूखा मुँह खिल गया – 'अच्छा बीबी जी।'

सीमा के घर मे सात प्राणी खाने वाले थे, और एक आने वाला। बाप नाई था जो किसी के साझे मे सैलून चलाता था। कमाई अच्छी थी, लेकिन उसमे से आधी से ज्यादा वह दारू मे उडा देता था। जो कुछ बचता वह उसके इलाज मे खत्म हो जाता था, क्यो कि इस जहर की अति ने उसका शरीर छलनी कर दिया था। फलत मां बेटियां घर-घर में काम करके गृहस्थी की गाडी खींच रही थीं।

✪ ✪ ✪

उस दिन रात के दस बजे सीमा और उसकी छोटी बहन सरला अचानक बदहवास-सी भागी-भागी आईं। पूछने पर दोनों बहनें हिलक-हिलक कर रोने लगीं। पता लगा कि उनके पूज्य पिताजी खूब नशे मे धुत्त अनाप-शनाप बकते हुए घर में आए थे। तब तक खाना नहीं बन पाया था। माँ को बुखार चढा था। सरला खाना बना रही थी। नौ दस बरस की बच्ची, रोटी जल गई। बाप ने खाने की थाली उठाकर फेंक दी और लडकियों को मारने दौडा। वे घबरा कर रात भर के लिए उसके यहां शरण लेने आई थीं।

वह और उसके पति दोंनो असमंजस में पड गए। इन लडकियों को रात मे वे सुला तो लें पर कहीं उनका बाप उत्पात मचाने यहाँ आ धमके तो ?

लेकिन उन युगल बहनों का हिरनी के शावक जैसा भयभीत करूण चेहरा देख कर वह द्रवित हो गई। उसने एक बारगी सोच लिया – 'ठीक है तुम दोंनो यहाँ बरामदे में सो जाओं।'

शुरू रात उसकी बडी व्यग्रता से बीती। जरा सी आहट उसे उनके क्रूर पिता की कल्पना करा देती थी। उसे आज पता लगा कि दुनिया में ऐसे लोग भी होते हैं जिनके आगे शराब के अतिरिक्त अपने परिवार, अपनी संतान की परेशानी, कोई वजन नहीं रखती। शराब का सम्मोहन उन्हें इतना अवश कर देता है कि उन्हें अपना और अपने परिवार का भविष्य नजर नहीं आता। उस नशे में वे लोग कल्पना के इन्द्रलोक में भ्रमण करते रहते हैं, जहाँ यथार्थ जीवन के अभाव, भूख, व कष्ट नहीं होते। उसी स्वप्न लोक में विचारण करने के लिए ही वह पेट पर पट्टी बांध कर पेग पर पेग चढाए जाते हैं।

बडे विचित्र विचारों में खोई वह रात को ठीक से सो नहीं पाई। सुबह मुँह अंधेरे फिर खट्-खट्। उनींदी सी उसने दरवाजा खोला। लडकियो को लेने उनकी माँ आई थी। उसने पहली बार उस को देखा। बुखार मे तपती, पीली, दुर्बल देह उस पर उभरा हुआ पेट। मनुष्य की जिजीविषा भी क्या है ? परन्तु इसे जिजीविशा नहीं विवशता कहना ही उचित होगा।

उसने माँ से रात की घटना के बारे में पूछा तो उसकी पीडित दृष्टि उठी और तुरन्त ही नीचे झुक गई। उसकी पलकें छलक रहीं थी। मौन् ने सब कुछ उगल दिया था।

विगत के इतने सारे चित्र उसके मन मे गड्-मड् होते चले गए। जाने वाला जा चुका था। वह अब उस जीवित कंकाल को झूठी सांत्वना देने जाने को उद्यत थी। ●

चक्रव्यूह

खिडकी खोलते ही धूप का एक धारीदार टुकडा कमरे में आकर पसर गया। कमरा प्रकाश से भर गया। अभी तक खिड़की बंद होने से यह अहसास ही नहीं हुआ था कि दिन कितना चढ गया है।

स्टेशन जाने का समय निकट आ रहा था। विक्कू गुडिया को स्कूल पहुँचा कर स्वयं भी स्कूल चला गया था। वह बुआ को लाने स्टेशन जाना चाहता था। परन्तु मैंने मना कर दिया। बेचारा बच्चा। अभी से सारे उत्तरदायित्व उठाना चाहता है।

रोहित को नाश्ता करा कर मैंने कहा – "मैं स्टेशन जा रही हूं। उन्होनें मुझ ऐसे निरीह दृष्टि से देखा कि मैं भीतर तक आहत हो गई। मैं देख रही थी कि बिस्तर पर पडा यह पुरूष किस कदर विवश और लाचार हो गया है। समय किसी का सगा नहीं होता। ईश्वर किसी दुश्मन को भी बुरा समय न दिखाए। रोहित की आँखों में बस गई लाचारी को दूर करने का मैं अथक प्रयास कर रही हूं। डॉक्टर ने विश्वास दिलाया है कि रोहित ठीक हो जायेंगे, थोडे धैर्य और साहस की जरूरत है। परन्तु रचना ? वह अवश्य कुछ गडबड करेगी। मैंने उसे लिखा था कि वह इस समय नहीं आए लेकिन वह मानी नहीं।

गाडी की प्रतीक्षा में खडे-खडे मेरी आँखे डाऊन हुए सिगनल पर टिकी हैं और मन कहीं दूर अतीत में भटक रहा है–

हरी-भरी सुखी गृहस्थी। परन्तु भगवान किसी के चारों कोने नहीं भरता, अत मेरे सारे कोने भरे देख कर कैसे निश्चित बैठ सकता था। उसकी ईर्ष्या का प्रकोप मेरी सुखी गृहस्थी पर हो ही गया। रोहित को पैरेलिसिस का अटैक हो गया। दो दिन तेज बुखार और ब्लड प्रेशर बेहद हाई , फिर जैसे सब कुछ समाप्त। इसके साथ रोहित की बोली भी जैसे बंद हो गई। बहुत पूछने पर हाँ हूँ भी मुश्किल से ही करते थे। यह बात नहीं कि बोल नहीं सकते हो। पर जैसे उनके बोलने की इच्छा ही मर गई थी। हर समय सोच मे डूबे शून्य में ताकते रहते थे।

अजीब केस था। डाक्टर भी परेशान कि रोहित बोलते क्यों नहीं जब कि मुँह पर पैरेलिसिस का बिलकुल असर नहीं था, बस दोनो पैरों पर मामूली असर था।

रचना पता लगते ही आई थी। मुझसे बहुत नाराज थी कि मैंने उसे खबर नहीं दी। मैं क्या कहती उससे? उस समय मेरी मन स्थिति ऐसी नहीं थी कि उससे बहस करती। उन दिनों मैं परेशान-सी अस्पताल, घर और नौकरी के चक्रव्यूह में ही घूमती रहती थी।

डाक्टर कहते कि रोहित को सोचना नहीं चाहिए बल्कि खुश रहना चाहिए तभी ब्लडप्रैशर नार्मल होगा। उस दिन साइकियाट्रिस्ट डा० घोष ने जो कहा वह मेरे लिए एक नया आघात था।

' मिसेज उपाध्याय, आपके पति को दवा से अधिक आपके प्रेम, आपके विश्वास और सेवा की जरूरत है। लगता है किसी बात से इन्हें गहरा धक्का पहुँचा है।' सुनकर मैं स्तब्ध रह गई थी। मेरा प्रेम ? मेरा विश्वास? क्या मैं अब तक रोहित को प्रेम और विश्वास नहीं दे सकी थी ? लगा कि मैं ही कहीं छली गई हूँ। लेकिन डाक्टर से क्या कहती ?

डा० घोष कहे जा रहे थे कि आपको इनका खोया हुआ आत्मविश्वास फिर से लाना है। मैं जानता हूँ कि यह कठिन काम है। फिर भी आपको प्रयत्न करना होगा। मिस्टर रोहित के लिए इतना अधिक चुप रहना ठीक नहीं है।

अब मेरे सामने स्पष्ट होने लगा था कि कैसे ये दिन पर दिन मुझसे कटने लगे थे और गुमसुम रहने लगे थे। पूँछने पर यूंही टाल देते थे।

नौकरी का प्रस्ताव करके मैंने कोई गलती नहीं की थी। आजकल न जाने कितनी औरतें नौकरी करतीं हैं। फिर मेरे पास तो अवकाश भी था। दोनों बच्चे स्कूल चले जाते थे और रोहित दुकान। मै अकेली बोर होती थी। इसके अलावा मैं केवल घर के कामों में ही नहीं फँसी रहना चाहती थीं, इससे मेरा आत्मविश्वास कुंठित होता जा रहा था। हाँ, एक बात और थी जो मन के किसी कोने में दुबकी हुई थी – अपने द्वारा उपार्जित धन की लालसा। वैसे भी मेरी इच्छा थी कि कुछ पैसा किसी सकट के लिए सुरक्षित रहे। दो साल पहले इन्हें दुकान में नुकसान हो गया था उन दिनों काफी परेशानी उठानी पडी थी।

मैं इन्हीं विचारों में डूबी खडी थी कि ट्रेन आ गई। रास्ते में मैंने रचना से साफ कहा – भैया से व्यर्थ की सहानुभूति मत दिखाना। डॉक्टर ने मना किया है। बस हँसी मजाक की हल्की फुल्की बातें करना। रचना विमूढ-सी मुझे देखती रह गई, व्यर्थ की सहानुभूति ? यह सुन कर वह कुछ परेशान हो गई थी तथा उसे पीडा भी बहुत हुई कि क्या वह इतनी दूर से 'व्यर्थ की सहानुभूति' दिखाने आई है ?

मुझे भी उससे यह कहने में कम ग्लानि नहीं हुई। परन्तु स्पष्ट कहना

आवश्यक था, वरना वह कहीं पिछली बार की तरह इनके सामने रोने-धोने लगे। इससे इनके सुधरते स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ सकता था। लेकिन मना करने के बावजूद वह घर पहुँचते ही भाई से लिपट कर रोने लगी और ये चुपचाप उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। उस समय वहाँ मुझे अपनी उपस्थिति अवाँछनीय-सी लगी। सोचा कि मैंने बेकार रचना से कहा, परन्तु क्या करती। आखिर मैंने कुछ सोच कर ही कहा था। यह उसे समझना चाहिए था। लेकिन मेरी व्यथा देखने वाला कौन था ? एक आह मेरे मुँह से निकल गई। मुझे लगने लगा कि अगर मैं जरा देर भी यहीं रुकी तो महीनों से संजोया मेरा साहस टूट जाएगा अतः निःशब्द बाहर निकल आई।

मेरे अन्तर मे कैसा मंथन हो रहा था। यह मैं किसे बताती ? समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं ? डॉक्टर कहता है कि किसी भी तरह रोहित को हँसने बोलने के लिए विवश किया जाए। उनके सामने दुख और परेशानी की बात न की जाए। और रचना हर समय उनसे उनकी बीमारी की बात करती रहती थी। सच पूछो तो ये दिल से गूंगे हो गए थे। जब मैंने इनसे इंटरव्यू में जाने की बात बताई थी। तब ये आश्चर्य से बोले थे – कैसा इन्टरव्यू ? किसका इन्टरव्यू ?'

' मैंने एप्लाई किया था, वहाँ से इन्टरव्यू के लिए बुलाया है। बात .... यह है कि मैंने सारा दिन खाली .. .खाली बोर हो जाती हूं।' मैंने डरते हुए अटक-अटक कर कहा।

' हूँ ' और यह चुप हो गए। जब मैंने इन्हें देखा तो ये किसी गंभीर सोच में मग्न लगे।

' तो मैं कल चली जाऊं ?' बहुत साहस जुटा कर मैंने पूछा।

ये कठोरता से बोले – 'मुझसे क्या पूछती हो ? एप्लीकेशन क्या मुझसे पूछ कर भेजी थी ?' और ये नाश्ता छोड कर चले गए।

मै सकते मे आ गई। मैंने सोचा भी न था कि ये इस कदर नाराज हो जाएँगे। मेरे आँसू बहने लगे। शादी के पन्द्रह साल के जीवन मे यह पहला अवसर था। जब ये नाराजी में खाना छोड कर घर से गए थे। मन बेहद क्षुब्ध हो गया। सारा दिन किसी काम में जी नहीं लगा। कल इन्टरव्यू में कैसे जाऊंगी दिमाग में यही उधेड बुन रही। बार-बार विद्रोह के भाव भी उठते रहे कि हुँह होने दो नाराज। मैं कोई गलत काम कर रही हूं क्या ? घर में अतिरिक्त पैसा आऐगा तो क्या उनको सुविधा नहीं होगी ?

लेकिन रात तक जोश का उफान बैठ चुका था और मै अनेक तरह की शकाओं से घबराने लगी। इन्टरव्यू देने का विचार भी छोड दिया। पर आशा के विपरीत जब इन्होने दुकान से आकर मुझसे इन्टरव्यू मे जाने के लिए कहा तो मैं बितर-बितर इन्हें देखने लगी कि कहीं व्यग तो नहीं कर रहे है ? जाहिर था कि इनके

मन में भी दिन भर विचारों की उथल-पुथल होती रही थी। पता नहीं मुझे क्यों ऐसा लगा कि इन्होंने खुश होकर नहीं कहा है अत एक बार इच्छा हुई कि कह दू कि अगर तुम नहीं चाहते तो मैं नहीं जाऊंगी। पर तभी मन की सुप्त आकाँक्षा ने जोर मारा और मैं चुप लगा गई। मन ही मन मैने ईश्वर को धन्यवाद दिया तथा निश्चय किया कि इन्हे किसी तरह शिकायत का मौका नहीं दूंगी तो धीरे-धीरे इनकी नाराजगी दूर हो जाएगी।

बंधी-बंधाई घरेलू दिनचर्या में से निकल कर नए वातावरण में काम करने से मन में नए सिरे से उत्साह ने जन्म लिया था। एक अनिर्वचनीय खुशी से मैं झूमने लगी थी। वैसे खुश तो मैं पहले भी थी पर अब इसका रूप ही बदल गया था। अब मैं अधिक काम करने की क्षमता अनुभव करने लगी थी, अत. छोटी मोटी समस्याओं को तो नजर-अन्दाज कर जाती थी। रोहित पहले की अपेक्षा अब काफी चुप रहने लगे थे, इसे मैंने देख कर भी अनदेखा कर दिया। सोचा, समय के साथ सब ठीक हो जाएगा।

किन्तु मेरा अनुमान गलत सिद्ध हुआ। मेरे नौकरी करने से रोहित के अहम् को गहरी चोट पहुंची थी, जिसे वे चुपचाप सहन करने की कोशिश कर रहे थे। वे किस मानसिक तनाव में से गुजर रहे हैं यह मैंने जानने की कतई कोशिश नहीं की। अब वे अपने अधिकतर काम विक्कू से कराते या स्वयं करते थे, मुझसे नहीं कहते थे। मैंने कहा तो बोले तुम पहले ही बहुत व्यस्त रहती हो।

इस समय रचना ने आकर मेरे लिए काफी परेशानी पैदा कर दी थी। मेरे और मन चिकित्सक के प्रयत्नों से रोहित इस काबिल हो गए थे कि कभी-कभी बच्चों के बीच हँसने-मुस्कुराने लगे थे। वरना उनके चेहरे पर ऐसी भयावह चुप्पी छाई रहती थी कि मैं अक्सर घबरा जाती थी।

डॉक्टर ने कहा था कि मैं अपने शब्दों से इनके आत्मविश्वास को पुन वापस लाऊं। उनके अनुसार बार-बार जोर देकर कही हुई बात का मस्तिष्क की सुप्त चेतना पर प्रभाव पडता है, जिससे मरीज में पुन. आशा का संचार होने की संभावना रहती है। हो सकता है कि इस तरह उसकी सुप्त तंत्रियाँ जागृत होकर सामान्य हो जाएँ।

अतः मैं रोहित से बार–बार कहती रहती थी कि तुम कुछ ही दिन में बिल्कुल ठीक हो जाओगे। तुम को ठीक होना ही पड़ेगा, वरना हम लोगों की देखभाल कौन करेगा, दुकान कौन संभालेगा।'

पर रचना के आने के बाद ये फिर गुमसुम रहने लगे थे। मेरे समझाने के बावजूद वह हर समय भाई से यही कहती रहती थी –'हाय, तुम्हारे पैरों को क्या हो गया, अब तुम कैसे चलोगे, कैसे ठीक होगे आदि-आदि?' ये उस समय खोई-खोई दृष्टि से खिडकी के बाहर खुले आसमान को देखते रहते थे। इन्होंने अब बच्चो को पास बुलाना भी छोड दिया था तथा कमरे में मेरे पहुँचने पर ये सोने का अभिनय करने लगते थे।

कभी-कभी मेरी हिम्मत भी जवाब दे जाती थी और मैं झुंझला पडती – ये तुम्हे क्या हो गया है ? तुम बोलते क्यों नहीं ? बच्चों से तो बोलो। यह तो सोचो कि विक्कू तुम्हारे लिए कितना परेशान रहता है। फिर क्या तुम्हे दुकान नहीं संभालनी है? उस दिन तो मैं सन्नाटे में आ गई जब इन्होंने आग्नेय नेत्रों से घूरते हुए उत्तर दिया – तुम्हे क्या हो गया है ? क्या तुम दुकान नहीं संभाल सकती हो ? नौकरी कर सकती हो तो क्या दुकान नहीं संभाल सकती हो ?' इतना कहते ही ये बुरी तरह हांफने लगे थे। मैं एकदम घबरा गई कि इनकी ये उत्तेजना कहीं कोई और उपद्रव न खडा कर दे। मैने इन्हे शान्त करने का प्रयास किया किन्तु इन्होनें मेरा हाथ झटक दिया – 'तुम यहाँ से जाओ और मुझे अकेला छोड दो।' मैंने तुरन्त डॉक्टर को फोन किया।

पिछले चार माह में ये पहली बार इतना बोले थे। इन्होनें मन में जो ग्रन्थि पाल ली थी वह इस उत्तेजना में खुल गई। डॉक्टर बोले – यह शुभ लक्षण है। आप घबराइए मत। पर अब आपको नौकरी छोडनी पडेगी।' मैं क्या कहती। पहले ही निश्चय किया हुआ था कि रोहित के ठीक होते ही नौकरी छोड दूंगी।

रोहित की आकस्मिक उत्तेजना देख कर रचना बुरी तरह रोने लगी थी 'अरे मेरे भाई को क्या हो गया, अब भैया कैसे ठीक होंगे ?'

'तुम रो क्यों रही हो ? चुप हो जाओ। लगता है तुम्हारे भैया अब ठीक नहीं होंगे।' यह मैने इतने ठंडे स्वर में कहा कि रचना एक बारगी रोना भूल कर ठगी-सी मेरी तरफ देखने लगी थी।

'हाँ, क्योंकि तुम उन्हें ठीक नहीं होने दे रही हो।'

'मैं ?' विस्मय से उसका मुंह खुला रह गया।

'हाँ, तुम, तुम बार-बार उन्हें उनकी बीमारी का, उनकी असमर्थता का अहसास कराती रहती हो। मैंने तुमसे पहले दिन ही कहा था कि व्यर्थ की सहानुभूति मत दिखाना। यह बात तुम्हे बुरी लगी थी और तुमने मेरी बात नहीं मानी ...... पर अगर तुम सचमुच चाहती हो कि तुम्हारे भैया ठीक हो जाएँ तो तुम अपना रवैया बदल दो या अपने घर वापस चली जाओ।'

मेरी फटकार सुन कर रचना स्तब्ध रह गई। मुझे भी यह कहने मे बेहद दुख हुआ पर, मैं लाचार हो गई थी।

रचना रोते-रोते अपना सामान समेट रही थी और मैं सोच रही थी कि शायद अब मैं चक्रव्यूह से निकल सकूंगी। •

अन्ततः

ट्रेन छूटने मे बस कुछ ही मिनिट बाकी थे । स्टेशन पर शोर का सैलाब उमड रहा था। वह इस सब से अनजान न जाने कहाँ खोई हुई थी । किन्तु उसकी आँखे एक अप्रत्याशित प्रतीक्षा में प्लेटफार्म के इस सिरे से उस सिरे तक घूम रहीं थी । गुजरता एक-एक पल उसे भारी लग रहा था तथा उसकी उतावली बढती जा रही थी। प्लेटफार्म के किसी स्टॉल पर रिकॉर्ड बज रहा था – कहाँ जा रहा है तू ऐ जाने वाले ....

इन्जन सीटी देकर अजगर की भाँति सरकने लगा था। उसका दिल डूबने लगा। वह बेचैन होने लगी । जी में आया कि गाडी से उतर पडे – यह क्या कर रही है वह ? क्यों यकायक सब कुछ छोड कर जा रही है ? शायद ठीक नहीं कर रही वह.. .. मस्तिष्क में अनेक प्रश्न सेही के कांटो की तरह चुभ रहे थे। और मन में उमडता-घुमडता तूफान, घुटन, रूदन, साथ में पराजय का ऐसा अहसास जिसने उसे क्षार-क्षार कर दिया था । दो दिन में जिन्दगी ने ऐसी शेषनागी करवट ली कि उसका वर्तमान भविष्य सभी कुछ डोल गया ।

आखिर ज्ञान नहीं आए । हवा में तैरते गाने का मंद स्वर अभी आ रहा था – ये जीवन सफर एक अन्धा सफर है, सम्हलना है मुश्किल बहकने का डर है .... उसकी पलकों पर सावन-भादों लदा था, अब बरसा-बरसा।

'बेटा, जरा भाई का ध्यान रखना–' मुन्ना को सीट पर सुला कर छैः बरस की प्राची से कह वह टायलेट में भागी। यदि एक मिनिट भी रूकती तो आँखे वहीं बरस जाती । दरवाजा बन्द करते ही वह हिलक-हिलक कर रोने लगी– यह क्या हो गया? कैसे सब कुछ खत्म हो गया ? इन्होने ऐसा क्यों किया, क्यो किया . ... .हे ईश्वर ! अब मैं क्या करूं . . . .उसकी हिचकियाँ बन्द ही नहीं हो रही थीं । न जाने कितनी देर वह टायलेट में बंद रोती रही कि बाहर से दरवाजा पीटने के साथ प्राची की आवाज सुनाई दी– 'ममी .. ममी. . ..भैया रो रहा है. .. दरवाजा खोलो . '

उसने तुरन्त अपने आँसू पोंछ कर मुँह धोया, पर्स में से नैपकीन निकाल कर मुँह पोंछ कर दरवाजा खोला। प्राची रूआँसी हो रही थी– 'कितनी देर लगा दी ममी भैया चुप ही नहीं हो रहा ....'

''तू मुन्ना को अकेला क्यों छोड आई ? '' – वह लपक कर वहाँ पहुँची। पास मे बैठी एक प्रौढ महिला ने मुन्ना को पकड रक्खा था – 'बहन जी, इस

कभी-कभी मेरी हिम्मत भी ज
तुम्हे क्या हो गया है ? तुम बोलते क्यो
विक्कू तुम्हारे लिए कितना परेशान रहत
उस दिन तो मैं सन्नाटे मे आ गई जब
– तुम्हे क्या हो गया है ? क्या तुम दुका
हो तो क्या दुकान नहीं संभाल सकती
थे। मैं एकदम घबरा गई कि इनकी ये
दे। मैने इन्हे शान्त करने का प्रयास कि
यहाँ से जाओ और मुझे अकेला छोड द

पिछले चार माह में ये पहली
पाल ली थी वह इस उत्तेजना में खुल ग
घबराइए मत। पर अब आपको नौकरी
निश्चय किया हुआ था कि रोहित के ठी

रोहित की आकस्मिक उत्तेजना
मेरे भाई को क्या हो गया, अब भैया कैसे

'तुम रो क्यों रही हो ? चुप हो
होंगे।' यह मैंने इतने ठंडे स्वर में कहा कि
मेरी तरफ देखने लगी थी।

'हाँ, क्योंकि तुम उन्हें ठीक नहीं

'मैं ?' विस्मय से उसका मुंह खुल

'हॉ, तुम, तुम बार-बार उन्हें उनक
अहसास कराती रहती हो। मैंने तुमसे पहले कि
मत दिखाना। यह बात तुम्हें बुरी लगी थी और
पर अगर तुम सचमुच चाहती हो कि तुम्हारे भैर
बदल दो या अपने घर वापस चली जाओ।'

मेरी फटकार सुन कर रचना स्तब्ध रह गई
हुआ पर, मै लाचार हो गई थी।

रचना रोते-रोते अपना सामान समेट रही थी
अब मैं चक्रव्यूह से निकल सकूंगी। •

उस दिन वह निश्चित रूप से अपने 'क्यों' का उत्तर नहीं ढूढ पाई थी। पर कहीं कुछ था ज्ञान के व्यवहार में जो उसे उसके प्रति चौकन्ना रखता था । आज उसे अपने मन में उपजी दुविधा का, अपने 'क्यों' का उत्तर मिल चुका था । औरत का मन अत्यन्त संवेदनशील होता है। पुरूष के प्रति वह सदा सर्तक रहती है। उसकी अन्तर्दृष्टि पुरुष के हर छोटे-बडे व्यवहार को शंकित दृष्टि से देखती हैं।

बहुत ही बोझिल मन से वह कानपुर के लिए रवाना हुई थी ।

— बाबूजी से कहना मैं जल्दी पहुँचूगा उनकी तबियत का हाल लिखती रहना.............

जब तक ज्ञान आँखों से ओझल नहीं हुए तब तक अनुराधा खिडकी पर झुकी हाथ हिलाती रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे मन यहीं छूटा जा रहा है। बहुत साल बाद ज्ञान से अलग हो रही थी ।

बाबूजी भी बस अपनी जिद के कारण वहाँ कानपुर में पडे हुए थे। पहले तो चलो ममी जी थीं। उनके देहान्त के बाद कितना आग्रह किया कि वे उन लोगों के साथ रहें । लेकिन वे टाल देते थे। तर्क था कि उस महानगर में वे बिल्कुल निकम्मे, असहाय हो जाऐंगे। कानपुर में यार-दोस्त थे, प्रात कालीन गंगा किनारे भ्रमण था, मंदिर, सत्संग आदि थे। अत. यहाँ निभ जाता है। वहाँ दिल्ली में कहाँ 'किसके साथ उनका समय कटेगा ?' बोले — नहीं भई नहीं, मैं यही ठीक हूँ यहाँ रहता हूँ तो घर की देखभाल भी रहती है ... फिर मेरे पास यह दुर्गा है, मिश्रानी आती ही है.......... मुझे कोई परेशानी नहीं है यहाँ . और तुम लोग कौन बहुत दूर हो। जब मन करेगा तुम लोगों के पास पहुँच जाऊंगा ।'

बाबूजी ने उन लोगों को निरूत्तर कर दिया था। वस्तुत. बाबूजी की बात सच भी थी। दिल्ली में किसके पास समय है ? शहर की भीड-भाड और स्थानों की लम्बी दूरियों ने आदमी को पागल-सा बना दिया है। उसका अपना अस्तित्व तक इस भागम-भाग में कहीं गुम होकर रह गया है।

अनु के वहाँ पहुँचने के बाद बाबूजी स्वस्थ हो गए थे । उन्हें कोई रोग तो था नही। बुढापे और अकेलेपन से परेशान वे बच्चों को अपने पास देख कर खिल उठे थे।

ज्ञान कानपुर नहीं आ रहे हैं यह उन्होने अनु को फोन पर बता दिया—'ओझा की माताजी सख्त बीमार हैं अतः वह छुट्टी गया है। अब मुझे छुट्टी नहीं मिलेगी।'

— 'तुम्हारे बाबूजी भी तो बीमार हैं'.. ....' 'ओफ्फो, अनु, अब तुम्हें कौन समझाए .. फिर तुम हो तो बाबूजी के पास। मैं ही आकर क्या कर लूगां ?'

अनु की दुविधा बढ गई थी। उसका मन कर रहा था कि वह तुरन्त

तरह बच्चे को छोड कर नहीं जाते ' – वह औरत उसे घूर रही थी। उसकी गुडहल सी-फूली लाल आँखो ने उसकी कहानी उजागर कर दी थी ।

उसने औरत से मुन्ना को लेकर छाती से चिपका लिया । उसका अन्तरतल कराह उठा था। मुन्ना को छाती से लगाते ही उसकी रूकी रूलाई फिर उमडने लगी थी। पर होठ भींच कर उसने आँसू रोक लिए और खिडकी से बाहर देखने लगी। ट्रेन पूरी रफ्तार से भागी जा रही थी। वह अवसाद में इतनी डूबी हुई थी कि उस महिला को – 'धन्यवाद' भी नहीं दे सकी। उसने प्राची को भी अपने से चिपटा लिया था– जरा-सी बच्ची। दो दिन में घटे सारे घटनाक्रम से बेहद सहमी हुई थी, जिसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि अभी दो दिन पहले ही ममी बाबा के पास से आई है अब कहाँ जा रही हैं ?

उस प्रौढ अनुभवी महिला ने उसके दुख को शायद कुछ भाँप लिया था या पता नहीं, लेकिन उसने उसकी पीठ पर हाथ रख कर ढाँढस जरूर बधांया –'हौसला रक्खो बहन और अपने बच्चों की तरफ देखो–'

पिछले बीस दिन में कैसी उथल-पुथल हो गई। ऐसा भूचाल आया कि अनुराधा की सुखी खुशहाल गृहस्थी तहस-नहस हो गई। पिछले दिनों का घटनाचक्र उसके दृष्टि-पटल के सामने चलचित्र की भांति घूम गया –

अभी एक दिन पहले ही वह कानपुर से लौट कर आई थी । तब ऐसा कुछ नहीं लग रहा था कि उसके और ज्ञान के संबंध ये मोड ले लेगे ।

बाबूजी की बीमारी की खबर सुन कर उसे जाना पड गया था । उन्होने ज्ञान को भी बुलाया था परन्तु वे नहीं जा सके थे और अनुराधा से बोले– ऐसा करो अनु, तुम्हीं चली जाओं अभी बाबूजी के पास । कुछ दिन बच्चों के साथ वहाँ रह आओगी तो वे खुश हो जाऐगे । उनकी तबियत भी सम्हल जाएगी–'

–'और यहाँ घर का काम ? तुम्हारा खाना पीना ?–'

–'अरे मेरी चिन्ता मत करों । इस समय बाबूजी के पास किसी का होना आवश्यक है।–'

–नही, मैं अकेले नहीं जाऊंगी मैं जानती हूँ तुम मेरे बिना एक दिन भी नहीं रह सकते – कुछ झेंपते हुए उसने कहा था।

–ओ, कम आन डियर, इस समय तुम्हे मेरी चिंता है ? दो चार दिन की बात है, छुट्टी मिलते ही मैं भी पहुँच जाऊंगा . तुम बाबूजी को समझा देना ।

फिर भी उसका मन अकेले जाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था । क्यो ? शायद अन्तर्मन के किसी कोने मे संदेह के अंकुर ने जड जमा ली थी । यद्यपि

उस दिन वह निश्चित रूप से अपने 'क्यों' का उत्तर नहीं ढूंढ पाई थी। पर कहीं कुछ था ज्ञान के व्यवहार में जो उसे उसके प्रति चौकन्ना रखता था । आज उसे अपने मन मे उपजी दुविधा का, अपने 'क्यो' का उत्तर मिल चुका था । औरत का मन अत्यन्त संवेदनशील होता है। पुरूष के प्रति वह सदा सर्तक रहती है। उसकी अन्तर्दृष्टि पुरुष के हर छोटे-बडे व्यवहार को शंकित दृष्टि से देखती हैं।

बहुत ही बोझिल मन से वह कानपुर के लिए रवाना हुई थी ।

— बाबूजी से कहना मैं जल्दी पहुँचूगा .... उनकी तबियत का हाल लिखती रहना. . . .

जब तक ज्ञान आँखों से ओझल नहीं हुए तब तक अनुराधा खिडकी पर झुकी हाथ हिलाती रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे मन यहीं छूटा जा रहा है। बहुत साल बाद ज्ञान से अलग हो रही थी ।

बाबूजी भी बस अपनी जिद के कारण वहाँ कानपुर में पडे हुए थे। पहले तो चलो ममी जी थीं। उनके देहान्त के बाद कितना आग्रह किया कि वे उन लोगों के साथ रहें । लेकिन वे टाल देते थे। तर्क था कि उस महानगर में वे बिल्कुल निकम्मे, असहाय हो जाऐंगे। कानपुर में यार-दोस्त थे, प्रात: कालीन गंगा किनारे भ्रमण था, मंदिर, सत्संग आदि थे। अत यहाँ निभ जाता है। वहाँ दिल्ली में कहाँ 'किसके साथ उनका समय कटेगा ?' बोले — नहीं भई नहीं, मै यही ठीक हूँ यहाँ रहता हूँ तो घर की देखभाल भी रहती है ... . फिर मेरे पास यह दुर्गा है, मिश्रानी आती ही है. . मुझे कोई परेशानी नहीं है यहाँ . और तुम लोग कौन बहुत दूर हो। जब मन करेगा तुम लोगों के पास पहुँच जाऊंगा ।'

बाबूजी ने उन लोगो को निरूत्तर कर दिया था। वस्तुतः बाबूजी की बात सच भी थी। दिल्ली में किसके पास समय है ? शहर की भीड-भाड और स्थानों की लम्बी दूरियो ने आदमी को पागल-सा बना दिया है। उसका अपना अस्तित्व तक इस भागम-भाग में कहीं गुम होकर रह गया है।

अनु के वहाँ पहुँचने के बाद बाबूजी स्वस्थ हो गए थे । उन्हें कोई रोग तो था नही। बुढापे और अकेलेपन से परेशान वे बच्चों को अपने पास देख कर खिल उठे थे।

ज्ञान कानपुर नहीं आ रहे हैं यह उन्होनें अनु को फोन पर बता दिया—'ओझा की माताजी सख्त बीमार हैं अतः वह छुट्टी गया है। अब मुझे छुट्टी नहीं मिलेगी।'

— 'तुम्हारे बाबूजी भी तो बीमार है'. . .' 'ओफ्फो, अनु, अब तुम्हें कौन समझाए . . .फिर तुम हो तो बाबूजी के पास। मैं ही आकर क्या कर लूगां ?'

अनु की दुविधा बढ गई थी। उसका मन कर रहा था कि वह तुरन्त

दिल्ली पहुँच जाए। आखिर ज्ञान आ क्यों नहीं रहे ? उन्होने पहले ही छुट्टी के लिए एप्लाई कर रक्खा था   ओझा को छुट्टी मिल गई, उनको नहीं मिल सकती....

अनु के पहले से ही शंकित मन में अनेक आशंकाऐं जन्म लेने लगीं थी। बाबूजी उसे अभी जाने नहीं दे रहे थे। उनका कहना था कि अभी बच्चों की छुट्टियाँ हैं अत जाने की क्या जल्दी है ?

उसने दोबारा ज्ञान को फोन किया । ये भडक उठे थे – कल तुम्हें बताया तो था कि छुट्टी नहीं मिल रही है फिर बार-बार कहने का क्या फायदा . ... बाबूजी का ध्यान रखना।' और धडाक से उन्होंने फोन रख दिया था।

उस दिन विभा का पत्र पढ कर तो उसके पैरों तले की धरती खिसक गई थी। वह सकते में आ गई थी। उसकी शंका सच निकली। विभा ने लिखा था– दीदी आपको संभवत मेरी बातें अच्छी न लगें। किन्तु मैं अपना फर्ज समझ कर आपको यहाँ की स्थिति से अवगत करा रही हूँ। कुछ ही साल के आपके सानिध्य में मुझे आपसे बेहद आत्मीयता हो गई हैं। अत आपका किसी प्रकार अहित हो, वह मैं नहीं देख सकती हूँ ।

आजकल आपका घर कॉलोनी में चर्चा का विषय बना हुआ है। भाई साहब की दो कजिन इन दिनों आपके यहाँ आई हुई हैं। यूं तो किसी रिश्तेदार का आना चर्चा का विषय नहीं होता है। परन्तु ये कह रहे थे कि वे दोंनो कजिन नहीं अपितु भाई साहब के दफ्तर की कुलीग हैं। देर रात तक उनके साथ भाई साहब का घूमना, हँसी मजाक, शोरगुल लोगों की नजरों में चुभने लगा है। कभी-कभी तो वे रात में भी वहीं रह जाती हैं   .   .उन लडकियों के ढंग कुछ ठीक नहीं लग रहे हैं। भाईसाहब की व्यक्तिगत बातें लिखने के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

आपकी विभा

पत्र पढ कर वह एक दिन भी कानपुर नहीं रूक सकी थी और बिना सूचना दिए ही वह दिल्ली पहुँच गई थी। अचानक उसे देख कर ज्ञान सकपका गए थे– 'अरे बिना किसी सूचना के चली आई' ?

– 'क्यों, मुझे क्या बिना सूचना दिए नहीं आना चाहिए था ?'

– 'नहीं यह बात नहीं । तुम खबर देतीं तो मैं स्टेशन आ जाता .   पर यूं अचानक कैसे आ गई ?'

बिना उत्तर दिए उसने एक उडती निगाह कमरे मे डाली। ज्ञान की सकपकाहट देख कर उसका शक मजबूत हो गया था। यह उसका सौभाग्य था या दुर्भाग्य कि उस समय वहाँ वे तथाकथित कजिन नहीं थीं। वैसे वह जानती थी कि शहर मे ज्ञान की दूर या पास की कोई कजिन नहीं रहती थी। घर की हालत देख कर उसने माथा पकड लिया था। सब कुछ अस्त-व्यस्त था। रसोई मे जूठे बर्तनो का अंबार

लगा था। चाय, चीनी, घी, मसाले सब बिखरे हुए थे। ढेरों धूल, कूड़ा, रबडबैंड, बिंदी जगह-जगह पडे थे। सबसे ज्यादा उसका बैडरूम अव्यवस्थित था। उसकी अलमारी का सामान भी तितर-बितर था। ड्रेसिंग टेबिल पर लिपिस्टिक और हेयर बैंड पडे थे और उसका पलंग .. । सबसे पहले उसने उस पर बिछे बैडकवर को उतार कर फेंका। घर की इंच-इंच जगह पीछे से किसी स्त्री की उपस्थिति प्रकट कर रही थी। यह सब देख कर उसका पोर-पोर क्रोधाग्नि से झुलस गया था। विभा ने सच ही लिखा था।

ज्ञान का स्वभाव रसिक था तथा पार्टियों और होटल में वे शराब भी पीते थे। ऑफिस की अपनी महिला सहयोगियों के हँसी-मजाक बात-चीत का वर्णन उसके सामने प्रायः करते रहते थे। कई बार तो यह वर्णन मर्यादा की सीमा भी लांघ जाता था। इस बात पर ज्ञान से उसका अनेक बार विवाद हुआ था। परन्तु उसे रंचमात्र भी कभी इस बात का संदेह नहीं हुआ था कि ज्ञान इस सीमा तक उतर जाऐंगे। उसकी अनुपस्थिति में घर को कोठा बना देंगे। वह यह सोच-सोच कर लज्जा से गडी जा रही थी कि मुहल्ले वालों ने क्या सोचा होगा ? इन्होने सारी इज्जत पर पानी फेर दिया । घर की मर्यादा को भंग कर दिया था।

– 'यह घर की क्या हालत कर रक्खी है ? नौकरानी नहीं आ रही क्या ?' वह बिफर गई थी ।

– 'भई, यह नौकरानी-चौकरानी का बंधन अपने बस का नहीं। तुम्हारे जाने के बाद मैंने उसकी छुट्टी कर दी थी।'

– क्या ? बीस दिन से छुट्टी कर रक्खी है ?' उसका मुँह विस्मय और क्रोध से खुला का खुला रह गया था।

– और मेरी अलमारी का सामान किसने छेडा ? साड़ियाँ किसने पहनी ?' उसने सख्ती से पूछा था।

ज्ञान तब तक सम्हल चुके थे और उसके किसी भी आक्रमण का सामना करने का तैयार हो गए थे, बोले–यहाँ कौन पहनता तुम्हारे कपडे ? मैं पहनता क्या . . ?' उनके चेहरे और आवाज में पौरुष जन्य ढिठाई झलकने लगी थी।

– झूठ क्यों बोल रहे हो? कौन आया था यहाँ? मेरे कपडे किसने पहने?'

– यहाँ कौन आता ? तुम जल्दी मे सब ऐसे ही छोड गई होगी।'

– अच्छा, यदि यहाँ कोई नहीं आया तो यह लिपिस्टिक किसकी है ? मैं तो इतना गहरा और यह शेड लगाती नहीं हूँ, यह तुम्हें पता है।'

अब पुन इनके चौकने की बारी थी– अरे हाँ याद आया, वह विमला मौसी हैं न, उनकी लडकी सीमा आई थी मिलने के लिए, उसकी लिपस्टिक रह गई होगी ।'

– 'लेकिन सीमा तो पिछले महीने ही जर्मनी गई है, वह कैसे आ सकती है ?'

ज्ञान झूठ पर झूठ बोले जा रहे थे और वह उनसे सच्चाई उगलवाने पर तुली थी। उसके बार-बार पूछने पर वे बडे विद्रूप से बोले– 'अच्छा मान लो यहाँ मेरी गर्लफ्रेंड आई थी क्या करोगी तुम अब ? आते ही मूड खराब कर दिया।'

– मैंने मूड खराब कर दिया ? और तुमने क्या किया ? तुमने तो मेरी जिन्दगी खराब कर दी क्या नहीं किया मैंने तुम्हारे लिए पर तुमने मेरे पीछे से घर को कोठा बना दिया ' वह क्रोध से पागल हो रही थी और चीखे जा रही थी।

सडाक - उसके गाल पर ज्ञान का कसा हुआ हाथ पडा – 'बहुत देर से बक-बक किए जा रही हो पहले घर को तो सम्हाला नहीं और आते ही अंटशंट बकना शुरू कर दिया ' वे पैर पटकते हुए बाहर चले गए थें।

वह स्तब्ध रह गई थी । आदमी इतना बेशर्म हो सकता है क्या ? उसके पीछे से घर में कोई औरत रही है इसके एक नहीं कई प्रमाण मौजूद है, फिर भी झूठ पर झूठ बोले जा रहे हैं। थप्पड मार कर अपना पतित्व प्रदर्शित करना नहीं भूले। सोच रहे होंगे कि थप्पड खाकर वह चुप रह जाएगी।

मुन्ना भूख से रो रहा था और प्राची भी उन दोनों की लडाई से डरकर अपने कमरे में रो रही थी। उसने बच्चों को बिस्कुट देकर चुप कराया फिर उनके पास ही धम् से बैठ गई। उसके मस्तिष्क ने काम करना बंद कर दिया था। कुछ ही दिनों मे सब मटिया-मेट हो गया था। उसे अपनी जिन्दगी सारहीन लगने लगी थी। जब जीवन से जुडे सारे संवेदित-संदर्भ नष्ट हो जाते हैं तो कुछ भी शेष नहीं रहता । उसके लिए भी अब कुछ नहीं बचा था। उसकी छलछलाती आँखों में कुछ चेहरे घूम गए– नीलिमा, डौली आहूजा, पिंकी कौन हो सकता था यहाँ ?

डिस्कोथिक के नीम अँधेरे संगीतमय वातावरण मे परफ्यूम की महक से लतफत डौली आहूजा को उसने बिना वहाँ जाए ही ज्ञान की बाहों में झूलते देखा था । नीलिमा के साथ होने वाले शराब के दौर, एकता और पिंकी के साथ दिल्ली की सडकों पर घूमना यह सब वह बहुत साल से बर्दाश्त कर रही थी किन्तु अब जो हुआ वह बर्दाश्त से बाहर था। अब तक ज्ञान जो भी कुछ करते थे घर के बाहर ही करते थे। लेकिन अब उन्होनें घर की मर्यादा की सीमा का उल्लंघन कर दिया था समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ? अपना सिर फोडे या

हर आदमी के दो रूप होते हैं– एक बाहरी सभ्य, शिष्टाचारी, दूसरा आन्तरिक – नग्न, वीभत्स और आदिम। सम्भवत आन्तरिक रूप ही उसका वास्तविक रूप होता है। कम से कम ज्ञान का असली रूप यही प्रकट हुआ था ।

शादी के समय ज्ञान कितने सुशील, शिष्ट और शालीन लगते थे। उनको देख कर कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि उनका वास्तविक रूप दूसरा होगा। यूं यह सब जानते थे कि उच्च अधिकारी है, थोड़ा पीना-पिलाना चलता होगा पर बात इतनी आगे तक होगी यह तो उसने भी कल्पना नहीं की थी । शादी के बाद जब उसे ज्ञान के रसिक और मनचले स्वभाव का पता लगा था तो उसने यह सोच कर मन को समझा लिया था कि उसके रहने से सभवत उनका स्वभाव बदल जाएगा। किन्तु उसे आज लग रहा है कि उसने कितना गलत सोचा था।

घर की हालत देख कर उसे रूलाई छूट रही थी। वह अन्दर ही अन्दर घृणा और क्रोध से सुलग रही थी। आज उसका अपना घर उसके लिए अछूत हो गया था। बच्चों को उसने साथ लाया खाना खिला कर सुला दिया था। मुन्ना तो सो गया परन्तु प्राची लेटी दबी-सहमी आँखों से उसे देख रही थी। छ. साल की मासूम बच्ची यह तो समझ रही थी कि पापा-ममी में झगडा हुआ है। पर क्यों, यह उसकी बाल बुद्धि से बाहर था। एक दो बार उसने पूछा भी कि ममी क्या हुआ, क्यों रो रही हो ? लेकिन उसने उसे झिडक दिया था।

वह भूखी-प्यासी दिन भर सोचती रही। उसे कोई फैसला करना था, इस पार या उस पार। क्योंकि जो सिलसिला एक बार शुरू हो गया उसका अब जाने कहाँ अंत होगा। ज्ञान से कहने-सुनने का अब कोई फायदा नहीं था, यह वह अपने नौ वर्ष के वैवाहिक जीवन के अनुभव से जान गई थी ।

अन्ततः उसने दो टूक फैसला करने का निश्चय कर ही लिया। वह पढी-लिखी है। नौकरी कर सकती है। बच्चों को पाल सकती है। यूं दिन रात की घुटन और जलालत क्यों भुगते ? .परन्तु इस समय वह कहाँ जाए ? यह बहुत बड़ा प्रश्न उसके सम्मुख था। मायके में कोई है नहीं । एक भाई है जो सात समुन्दर पार बैठा है। लेकिन वह इस स्थिति में यहाँ भी नहीं रह सकती थी। एक दिन तो क्या उसे एक क्षण भी रूकना कठिन लग रहा था। यहाँ का पानी तक उसके लिए मुहाल हो गया था। बहुत विचार करने के बाद उसने ज्ञान के लिए दो लाईन लिख कर छोड दी थी–

इन स्थितियो में अब मेरा यहाँ रहना असम्भव है। अभी बाबूजी के पास जा रही हूँ। आगे का बाद में सोचूंगी।

अनुराधा

वह बच्चों को लेकर सदा के लिए घर से निकल आई थी। •

रूक्मो बुआ

शाम पूरी तरह झुक आई थी। गाव की शाम जल्दी ही गहरा जाती है। ज्यो-ज्यो शाम गहराती है त्यो-त्यों सन्नाटा बढता जाता है। वहाँ शहरों की तरह चहल-पहल और रौनक जो नहीं होती। साई-सांझा से लोग घरों में दुबकने लगते हैं।

रात की ओर तेजी से भागती उस शाम मे गांव के बेतरतीबी से बने कच्चे-पक्के मकान अपना आकार भूल कर आपस में गड्ड-मड्ड हो जाते हैं। एक अजीब सी उदासी सारे वातावरण में छा जाती है। तभी सडक पर लगे पीले बल्ब भक् से जल उठते हैं। उनकी हल्की फीकी रोशनी यहाँ-वहाँ-छितरा जाती है। उस पीली मटमैली रोशनी में मकान फिर से अपना आकार बनाने लगते हैं।

ऐसे ही अंधेरे में डूबी किसी-किसी शाम को रूक्मो बुआ की, तलवार की धार सी पैनी, आवाज गूँज उठती है और बंधता सन्नाटा टूटने लगता है। घर मुहल्ले के लोग एक बारगी चौंक पडते हैं पर शीघ्र ही अपनी दिनचर्या में मशगूल हो जाते है। औरतें कुछ पल ठिठककर फिर अपना चूल्हा - चौका सम्हाल लेतीं हैं। अजनबी आखो में जिज्ञासा देख कर घर की बडी - बूढी बताती हैं "अरी रूक्मणी है – बावली" ।

रूक्मों बावली का चीखना उनके लिए कोई मायने नहीं रखता। यह तो आए दिन का काम है कोई नई बात तो है नहीं। बावली जो ठहरी। अक्सर ही चीख-पुकार मचा कर, पटका-पछाडी करके दंगल मचाए रहती है। एक अर्थहीन सहानुभूति सुनने वालो के दिलो में जागती तो है लेकिन पानी के बुलबुले की तरह तुरन्त विलीन हो जाती है।

बच्चो की टोलियॉं रूक्मों बुआ को चिढाती है "बावली" "बुआ बावली"। और वे पत्थर उठा कर बच्चो की तरफ दौडती है "–ऐरे नासपीटो, करमजलो, कौनो लक्खन सिखाए है थारी महतारी ने ?"

बुआ को आते देख कर बच्चे दूर भाग जाते हैं। कोई बच्चा बुआ को मुँह चिढाता है, कोई अगूठा दिखाता है और कोई थूक भी देता है। बुआ तब उनके पीछे गाली देती, अपनी धोती सम्हालती, गिरती-पडती दौडती हैं। गाँव मे यह दृश्य अक्सर ही देखने को मिल जाता है।

मैं जब भी यह देखती हू तो विचलित सी होने लगती हूँ। हमारे समाज में पागल व्यक्ति लोगों के उपहास और मनोरजन के पात्र समझे जाते हैं, सहानुभूति और दया के नहीं। यह कैसी विडम्बना है कि हम दूसरे व्यक्ति के दुख और पीडा मे सुख ढूढते हैं।

मैं वच्चो को जब भी बुआ को तग करते देखती हूं तो उन्हे डॉट देती हूँ। बडा आश्चर्य होता है यह देख कर कि बच्चों की टोली में बुआ के अपने घर के वच्चे किसनू, प्रभू, महेश आदि भी शामिल रहते हैं।

बुआ जब कभी सामान्य होती हैं तो कभी-कभी मेरे घर आ जाती है। "बाई थे घर में हो कांइ ?" (बाई तुम घर में हो क्या?)

बुआ की आवाज सुन कर मैं हाथ की पुस्तक रख कर उनका स्वागत करती हूँ। वे थोडी देर इधर-उधर ताकती रहती है। जब उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि घर में मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है तो वे मेरी कुर्सी के पास जमीन पर बैठ जाती हैं।

"अर–र–र– यहाँ कहाँ बैठ गई बुआ। यहाँ ऊपर बैठो।" मैं मूढा बुआ के पास खींच देती हूं किन्तु वे मूढे को परे सरका देती हैं और वहीं पसर जाती हैं। बुआ को आराम करती देख मैं अपनी किताब उठाकर अधूरे छोडे गये प्रसंग को फिर पढने लगती हूँ।

पर कहॉ पढ पाती हूँ। बुआ एकाएक उठ बैठतीं और अपनी मैली धोती के पल्ले को सिर पर डालती हुई बडे दर्द भरे स्वर मे कहती हैं 'बाई, थे तो घना पढ्या लिख्या हो, समझदार हो। थम बताओ मैं कांई बावली लागू हूँ ?'

बुआ के स्वर की पीडा से मैं भीतर तक सिहर जाती हूँ। उनके अन्तर का दर्द चेहरे की एक-एक रेखा में मुखर हो उठता है।

बुआ ने मेरी पढाई-लिखाई और समझदारी के आगे एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया है और यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर मैं जानते हुए भी नहीं दे सकती। मैं बुआ को बेवजह ताकने लगती हूँ।

'ओ माट्टरनी जी, थे मोकूं इशां कइयां देख रिह्या हो ? मैं बावली ना हूँ।'

मैं लज्जित हो जाती हूं। अपनी गलती का एहसास होते ही मैं प्रसंग बदलते हुए कहती हूँ

"तुम्हे कौन पागल बताता है? तुम तो मेरी अच्छी बुआ हो। चलो उठो बहुत दिन से तुमने मेरे लिए रोटी नहीं बनाई। आज रोटी बनाकर खिलाओ तो।"

बुआ एकदम प्रसन्न हो जाती हैं और तुरन्त उठ बैठती हैं। जरा भी तो आलस्य नहीं है इस अधेड काया में। रोटी बना कर मुझे प्रेम-पूर्वक खिलाना इन्हें बहुत भाता है। जब-तब वे आकर मेरे लिए रोटी बना जाती हैं। उनके हाथ की बेजड की रोटी में स्वाद भी कुछ अलग होता है।

वे हमेशा की तरह मेरा स्टोव तो परे सरका देती हैं और कोने में बने चूल्हे मे आग लगाती है। लकडी कुछ गीली है सो धुँधआती है। लेकिन बुआ को कोई

परेशानी नहीं इसरो। वे अभ्यस्थ हैं इसकी। धुँए से मेरी आँखे जलने लगती हैं। अत मैं बाहर आँगन मे आकर रूमाल से आँखे मलने लगती हूँ। थोडी देर की फूफाँ के बाद लकडियाँ जल जाती हैं।

मुझसे पागल न होने का आश्वासन मात्र पाकर बुआ निश्चित हो गई हैं। मैं आँगन मे से ही इस भोली भाग्यहीन औरत को देखती रहती हूँ मैली बदरंग धोती, रूखे खुरदुरे हाथ, मिचमिचाती आँखें पर दिल की साफ।

उस दिन बुआ लगभग छ-सात वर्ष की लडकी को पकड कर स्कूल ले आई। मैं प्रधानाध्यापिका के कमरे से निकल कर कक्षा में जा रही थी। बुआ ने देख लिया और वहीं से पुकारने लगीं– 'ओ बाई, अरी ओ माट्टरनी बाई ——

मैं रूक गई। मुझे बडा आश्चर्य हो रहा था बुआ को स्कूल में देखकर। ये यहाँ क्यो आई ? इस विषय में मैं जब तक कुछ सोचूं तब तक वे लडकी को घसटती हुई मेरे पास ले आई। मेरा अनुमान था कि बुआ उस लडकी को स्कूल में दाखिल कराने लाई हैं। अत मैनें उससे पूछा–

"तुम्हारा नाम क्या है मुन्नी ? "

"बसन्ती" लडकी सहमी हुई लग रही थी और बुआ की पकड से छूटने का प्रयत्न कर रही थी। उसके चेहरे पर भय तथा विद्रोह के भाव क्षण-क्षण में आ जा रहे थे।

मुझे समझने में देर नहीं लगी कि यह दाखिले का मामला नहीं है। दूसरी कोई गंभीर बात है क्योंकि बुआ के दूसरे हाथ में एक संटी भी थी।

मुझे बुआ से उलझता देख कर कई अध्यापिकाऐं हँसती-मुस्कुराती निकल गई। सामने वाली कक्षा की लडकियाँ भी बार-बार हमारी तरफ देख रहीं थीं। मुझे कक्षा मे जाने में देर हो रही थी इस कारण मैंने बुआ से कहा कि यह स्कूल का समय है, शाम को वे घर पर आऐं।

लेकिन बुआ समय की पाबन्दी को क्या समझती। वे वहीं फसक्का मार कर बैठ गई। बसन्ती को भी खींच कर बिठा लिया।

"थे पढ्या ल्यो। तब तलक म्हें ऐही ठोर बैठया हैं।

यह तो बडी गभीर समस्या हो गई। मैनें तुरन्त बुआ का निपटारा करने में अपना कल्याण देखा। लडकी की स्थिति और बुआ के हाथ की संटी को देख कर मैंने दूसरा अनुमान लगाया कि जरूर बसन्ती ने बुआ की शान में कोई गुस्ताखी की होगी। मैंने उसे डपटा "क्यों क्या बात है ? क्या किया तुमने ? "

लडकी सहमी तो थी ही अब रूआँसी हो गई। वह कुछ कहे इससे पहले ही बुआ बोल उठी – बाई, थम नेक दम ले ओ। बसन्ती बता बाई को,

के मोकूं कुण-कुण बावली कहवे है। इक-इक के नाम बता। बाई सबन कू रैट (राईट) कर देगी।'

मै आवाक रह गई। यह क्या तमाशा हुआ ? मैं सोच रही थी कि बसन्ती ने ही कुछ शैतानी की होगी। लेकिन दूसरे बच्चों के अपराध की स्वीकारोक्ति मात्र के लिए बुआ बसन्ती को पकड लाऐंगी, वह भी स्कूल में, यह मैने सोचा भी न था।

मैनें कुछ सख्ती से बुआ को कहा "इसे छोड दो।"

लेकिन बुआ की समझने और मानने की संज्ञा धीरे-धीरे लुप्त होती जा रहीं थी और वे अचेतनता के गर्त में डूबती जा रही थीं। वे बडबडाने लगी थी– हुंह म्हाणे बावली कहे, म्हाणे खसम खाणी कहे ––– सबन कूं देख लूंगी ––– आग लगा दूगी ––– सबन का गला टीप दूगी।

बसन्ती निरन्तर छूटने का प्रयत्न कर रही थी किन्तु बुआ की दानवी पकड से वह छूट नहीं पा रही थी। उसकी कलाई नीली पड गई थी। मैं चिल्लाई 'पागल हो गई हो क्या ? छोडो इसे !'

बुआ यकायक चुप हो गई। वे मुझे घूरने लगीं। बसन्ती छूट कर भाग गई। एकाएक बुआ सिर पीट-पीट कर रोने लगीं ओ री ––– माई –––– ई बाई भी म्हाने बावली समझे है। अरी दैया री –––– थीं म्हारे करमा में आग लग्या री ––––

यहाँ भीड इक्ट्ठी हो गई। लडकियाँ कक्षा छोड कर बाहर आ गईं थी। प्रधानाध्यापिका भी आ गईं। मेरी स्थिति बडी विचित्र हो गई थी। स्कूल मे व्यर्थ का बखेडा खडा हो जाने की वजह से मैं बेहद शर्मिन्दा थी।

मैं समझ गई कि मेरे मुंह से "पागल" शब्द सुनकर बुआ को गहरी चोट पहुंची है। गांव भर में मैं ही तो उन्हें पागल न होने का आश्वासन देती रहती थी परन्तु इस समय क्रोधावेश में मुझे कुछ सूझा ही नहीं। मैं मन ही मन लज्जित तो बहुत थी पर अब क्या कर सकती थी। स्थिति मेरे हाथ से निकल चुकी थी।

बुआ सप्तम स्वर में चीखे जा रहीं थी। बडी बहन जी ने एक माई से कहा बुआ को उसके घर छोड आए।

लेकिन कैसे ? बुआ ने माई का हाथ ऐसा झटका कि वह बेचारी गिरते-गिरते बची। यह एक नई परेशानी पैदा हो गई। बुआ को घर कैसे भेजा जाय ? तभी पार्वती आई और बुआ के कान के पास चिल्ला कर बोली – 'बुआ सिपाई आ रह्यो है, भागो।'

एक मिनिट मे जैसे जादू हो गया। आधा घंटे से अलापती बुआ तुरन्त चुप हो कर उठ खडी हुई और भयभीत निगाहो से इधर–उधर देखते हुए भागने लगीं।

मेरा मन खिन्न हो गया। मैं छुट्टी लेकर घर आ गई। बुआ का चरित्र मुझे

व्यथित करता रहा। मनोविज्ञान कभी मेरा विषय नहीं रहा लेकिन मनोग्रन्थि से पीड़ित व्यक्ति सदा मेरे चिंतन का विषय रहे हैं।

बुआ कैसे पागल हुई यह भी एक दुखद घटना है।

अपनी युवावस्था में बुआ बहुत खुश मिजाज व मिलनसार थीं। जब भी ससुराल से आती तो गॉव भर के बच्चों को बिसाती की दुकान से मिठाई की गोलियां, चूरन, गुड के सेव आदि दिलाती रहती थीं। सारे बच्चे बुआ के पीछे लगे रहते थे। उस समय वे बच्चों में बच्चा बन जाती थीं। सुसराल की ताडना, अपमान सब कुछ भूल कर वे यहाँ मस्त रहती थीं।

विवाह के कई वर्ष बीतने पर भी उनके संतान नहीं हुई थी। इसलिए सास व जिठानियां उनकी खूब लानत-मला मत करती थीं। पति भी उनकी ठुकाई करने से नहीं चूकते। जिठानियां अपने बच्चो को उनसे दूर रखती और सदा उन्हें 'बाँझ' कह कर संबोधित करतीं। इससे उन्हें बेहद दुख होता लेकिन वे लाचार थीं।

संतान प्राप्ति के लिए जिसने जो कुछ बताया उन्होंने वही किया। गाँव की बडी बूढियों द्वारा बताए हुए घरेलू उपचार, टोनें-टोटके, झाड-फुंक सभी कुछ किया। किन्तु संतान नहीं होनी थी सो नहीं हुई। बच्चा न होने के कारण ससुराल मे उनकी स्थिति दिन प्रतिदिन बदत्तर होती जा रही थी। कुछ तो सारे दिन लाँछन और ताने सुन–सुन कर और कुछ अत्यधिक झाड–फूंक तथा जडी–बूटियों के सेवन से वे बौराने लगी थीं। कभी-कभी बक-झक करने लगती थीं।

पता लगा फलां गाँव मे एक ओझा है। कैसी भी बॉझ औरत हो, उसके ताबीज से जरूर संतान होती है। फलत. बुआ को वहाँ भेजा गया।

उस रोज वे वहाँ से लौट रहीं थीं। झुटपुटा हो गया था। आगे-आगे लाठी लिए पति देव और पीछे-पीछे पोटली बगल में दबाए बुआ। अचानक उनके सिर पर फट्ट से लट्ठ पडा। वार भरपूर था। वे गिर कर अचेत हो गई।

चार-पांच लठैत उनके पति पर टूट पडे। वे अकेले उनसे कहाँ तक जूझते। वे भी गिर पडे। वे खून से लतपथ हो गए थे। कुछ क्षण मे बुआ को होश आ गया। बचाइयो रे -------- मार डारा रे ------------

भाग्यवश कुछ लोग आ रहे थे। दूर से बुआ की चीख सुन कर भागे आए। तब तक आक्रमणकारी भाग गए थे। बुआ के पति अचेत हो गए थे। सिर से खून बहा जा रहा था। एक व्यक्ति ने उनके घाव पर कस कर अँगोछा बॉध दिया।

लोगों ने जैसे-तैसे उन दोनो को घर तक पहुँचाया। लेकिन बुआ का सब कुछ वहीं लुट गया।

पति के प्राण रास्ते मे ही निकल गए थे। गाँव घर में कोहराम मच गया।

बुआ तो संज्ञाहीन हो गई। उन्हें ऐसा जबर्दस्त सदमा लगा कि वे रो भी न सकीं।

पुलिस आई। लाश का पोस्ट मार्टम हुआ। बुआ से पूछ-ताछ की गई, पर बुआ तो पत्थर हो गईं थीं। कुछ भी न बता सकीं। पागलों की तरह दरोगा को देखती रहीं फिर घर के अन्दर भाग गई। पुलिस वालो ने बडी कठिनाई से दाह संस्कार करने दिया।

तीसरे दिन पुलिस वाले फिर आ धमके। बुआ की पेशी हुई। पर निरर्थक बुआ उन्हें देखते ही भाग गई।

बुआ के लिये ससुराल मे पहले ही अनेक विशेषण थे अब और जुड गये -- कुलच्छनी, डायन ------ खसमखानी, और न जाने क्या-क्या।

सुसराल में अब इस निपूती पागल विधवा को कौन पालता सो बुआ को सदा के लिये पीहर भेज दिया गया।

हँसमुख मिलनसार बुआ के जीवन की अब दिशा ही बदल गई थी। वे कई-कई दिन गुम-सुम बिना खाए पीऐ पडी रहतीं थीं। हँसती तो हँसें जातीं। किसी को लाठी लिये देख लेतीं तो रोने लग जातीं। लेकिन कभी-कभी वे बिल्कुल सामान्य रहती थीं।

गाँव की मानसिकता कुछ अजीब किस्म की होती है। अन्त करण से साफ सुथरी होने के बावजूद उसमे गॉठ-गठीलापन होता है। एक उलझाव होता है और गॉव वालों को उस उलझाव में ही संतोष मिलता है।

सो रुक्मों बुआ की सीधी-सपाट जिन्दगी को, कुछ तो नियति ने और कुछ लोगो ने, ऐसा उलझा दिया कि वे किसी दीन की न रही।

उनके हँसने-रोने, उठने-बैठने हर क्रिया-कलाप के अनेक बेमानी अर्थ निकाले जाने लगे। गाँव की बडी-बूढिया जब-तब उन पर अपनी टीका-टिप्पणी करती रहती थीं। एक कहती-- रुक्मो भैरो जी के मंदिर में ऐसे-वैसे दिनों में चढ गई सो उनका कोप उस पर फट पडा -- दूसरी कहती--सती के चीरे को रूक्मों बिना ढोके उलाँघ आई सो सतीमाता उससे रूष्ट हो गई आदि-आदि। यानि जितनें मुँह उतनी बातें। बुआ को झाडी वाले बाबा के गन्डे पहनाए गए। काल भैरवी से झडवाया गया किन्तु मर्ज बढता ही गया ज्यो-ज्यों दवा की।

✪ ✪ ✪

इधर काफी दिन से बुआ मेरे पास नहीं आई थीं। राहबाट मे भी कहीं दिखाई नहीं पडी थीं।

स्कूल में वार्षिकोत्सव होने वाला था। उसकी तैयारियाँ हो रही थीं। मै अत्याधिक व्यस्त थी। मुझे भी इन दिनों बुआ का ध्यान नहीं आया।

पूस का महीना था। हवा बेहद तीखी थी। सूर्य भगवान आँख मिचौनी–सी खेल रहे थे। मै अन्य अध्यापिकाओं के साथ स्कूल से लौट रही थी।

किसनू भागा चला आ रहा था। मेरे पास आकर बोला– बहनजी, जल्दी चलो। अम्मा बुला रही है।

"क्यों क्या बात है ? अम्मा को इस समय मुझसे क्या काम है ?" मैं आज तक रुक्मो बुआ के घर नहीं गई थी। न जाने आज मुझे क्यों बुला रही है ? 'बुआ ठीक तो है न ?'

जवाब देने के बजाय किसनू रोने लगा। मै शंकित हो उठी।

रोते-रोते किसनू ने किसी तरह बताया कि उस दिन स्कूल से आने के बाद बुआ बिल्कुल बावली हो गई थीं। बिना खाए पीए वे कई दिन तक कोठे में बन्द रहीं। खूब कहने-सुनने पर भी उसने किवाड नहीं खोले। एक दिन जब अन्दर से निकलीं तो बिल्कुल भूतनी जैसी हो रहीं थीं। लाल-लाल आँखे, बाल बिखरे हुए। आते ही चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। बाल नोचने लगीं। दाँतों से खींच-खींच कर कपडे फाडने लगीं। रसोई के बर्तन उठाकर बाहर फेंक दिए। बडी मुश्किल से ताऊ ने उन्हें पकड कर फिर बन्द किया। उस दिन से उनकी तबियत बहुत खराब है। बार-बार बेहोश हो जाती है। जब होश में आतीं हैं तो चीखने-चिल्लाने लगती है। खाना फेंक देती हैं। कई बार आपको पुकारती है। आज बाबू बुआ को पागल खाने में भर्ती कराने शहर ले जा रहे है। अम्मा ने यों आपको बुलाया है कि आप एक बार बुआ से मिल लो ।

मैं सन्न रह गई। यह सब क्या हो गया ? इतना सब हो गया और मुझे पता भी नहीं लगा। हतबुद्धि सी मैं किसनु को देखती रही।

"चलो भैन जी, टैम हो गया है। मोटर दरवाजे पर खडी है।

मैं झटपट किसनू के साथ उसके घर पहुँची। बुआ एंबुलेस में बैठी थीं। मेरी प्रतीक्षा की जा रही थी। चारो तरफ गाँव की भीड इकट्ठी हो गई थी। बुआ मुझे देखते ही बाल नोच कर चीखने लगी ––– अरी माट्टरनी बाई थम मोकूं बावली कहो हो। म्हां बावली ना हूं –––––––––––––––– ई सबन ने मौकू बावली कर रख्या है । ओ बाई –––––––––––––––– गाडी स्टार्ट हो गई थी ।

मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारने लगी । मेरी इच्छा हो रही थी कि मैं भी चीख – चीख कर कहूं कि बुआ तुम समधुम बावली नहीं हो मैंने ही तुम्हें पागल कर दिया। मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ बुआ . ..

पर मेरे मन की बात मन मे ही घुट कर रह गई । मुँह से एक शब्द भी नहीं फूटा।

गाडी चल दी । बुआ की चीख मुझे बेधे जा रही थी । मेरी आँखे आँसुओं से तर थीं । •

अहसास

कच्चे ऊबड-खाबड रास्ते को पार कर बस जैसे ही पक्की सडक पर उतरी, तैसे ही तुलसी ने राहत की सांस ली। चलो, पक्की सडक तो आ गई, अब धचके कम लगेंगें। अपनी उदास दृष्टि उसने सामने बिछी कोलतार की साफ-सर्पिल पट्टी पर डाली। उस पर बस तेजी से भागी जा रही थी। वह आँख मूँद कर बैठ गई। तभी दर्द की एक तीखी चुभन उसके सारे शरीर को झुरझुरा गई ।

उस चौडी स्लेटी पट्टी पर बस पींऽऽ–पींऽऽ करती तेजी से जा रही थी। सडक के दोनों तरफ कहीं मैदान और कहीं खेत लहरा रहे थे, साथ ही छोटे-बडे पेडों की पँक्ति भी चली जा रही थी। पर तुलसी इस सबसे बेखबर अपनी पीडा से परेशान अवसन्न-सी बैठी हुई थी। बस को तेजी से भागता देख कर उसके दर्द से मुर्झाए चेहरे पर संतोष की हल्की लकीर उभरने लगी थी कि आधा रास्ता तो पार हुआ, अब बाकी भी हो जाएगा।

"पर –– पर अब तक ये दर्द निगोडा जरा भी कम नहीं हुआ था –– नरस भैनजी कह रही थीं कि गोली से दर्द जरूर कम हो जाएगा। –––– और ये सहर अभी न जाने कितेक दूर है ? राम जाने कब वह अस्पताल पहुँचेगी और कब उसकी पीडा मिटेगी ?"

उसने कनखियों से पास में बैठे पति को देखा। वह नींद में मदहोश था। बस के झटकों के साथ उसका सिर कभी तुलसी के सिर से और कभी बगल वाले आदमी के सिर से टकरा रहा था। वह आदमी भी सो रहा था।

– ये मरद भी बस अजब ही होवैं हैं। जरा टेम मिला कि खर्राटें लेने लगे। सोने को तो तुलसी स्वयं सोना चाह रही थी पर पेट का दर्द उसकी आँख मुँदने ही नहीं दे रहा था। उसे तडपते हुए दो रात हो गई थीं। इस बीच एक पल के लिए भी तो उसकी आँख नहीं लगी थी। सारा बखत बस उठते-बैठते, काँखते-कराहते निकला था। और अभी न जाने कितना बखत ऐसे ही निकलेगा।

अचानक एक जोरदार झटका लगा। सामने अकस्मात गाय आ जाने से ड्राईवर ने ब्रेक लगाया था। तुलसी तिलमिला गई। बडी कठनाई से उसने होंठ भींच कर निकलती चीख रोकी थी। उसने हाथ बढा कर हरखू को हिलाया। वह भी चौंक उठा था– 'के है ? 'के कहै है ? '

'कछु नाय' डबडबाई आँखो से उसने पति को देखा और गाल पर दुलक आए आँसू धोती के पल्ले से पोंछ लिए। वह फिर आँख मींच कर बैठ गई। उसकी आँखें थीं कि बार-बार भरी जा रही थीं और वह उन्हें बार-बार पोंछ रही थी। हरखू उसकी व्यथा समझ तो रहा था पर कर क्या सकता था ? वह विवश था। मोटर गाडी

है कोई चीलगाडी (हवाई जहाज) तो है नहीं कि उड कर झपपट पहुंच जाएगी। यह तो पहुचेगी तब पहुचेगी। फिर भी उसने पत्नी को धीरज बँधाया – 'नैक सबुर कर' अब सहर आने ही वाला है। डिरैवर साब गाडी नैक बढा देते ––– घरवाली को तकलीफ जादा है –––'

ड्राइवर ने गला खँखारते हुए सैकिंड भर के लिए मुड कर तुलसी को देखा और मन ही मन बडबडाते हुए एक्सीलेटर दबा दिया। अब बस में बैठी हर सवारी तुलसी को देख रही थी।

'अरे भाया, तुम ठाडे हो जाओ और वहाँ सीट पर बैरबानी को लेट जावा दो' एक बुजुर्ग ने सलाह दी।

हरखू और उसके बगल वाला यात्री बस का डंडा पकड कर खडे हो गए। परन्तु तुलसी लेट नहीं सकी थी। जब से झटका लगा था तब से वह बेहाल थी। वह पेट पकड कर दुहैरी हुई जा रही थी– हे भगवान् । ये रास्ता कब कटेगा ? उसे इस समय हरखू पर बेहद क्रोध आ रहा था– ये मरद जात बडी बेरहम होवै है –– टेम –– या –– बेटैम, ठौर –– कुठौर कछु नाय देखे है ––– लुगाई को बस पीटबा पै ही रहे है ––– किस बुरी तरह हरखू ने वा बखत उसे मारा। आखिर उसका कसूर क्या था ? क्या यही कि उसने बेटे को पीटा ? तो क्या अपने पेट जाए बेटे को कसूर करने पर भी वह नहीं मार सकती ? –––– बेटा है या वास्ते वा से कछु नाय कहा जावेगा के ? जनम देने की पीडा तो मैं भोगूं और हक्क बेटे पै वा अपना जतावै ––– हुँह के रीत है ये ? कहवै है छोरी से नाय कहै कछु ––– अरे मूरख, छोरी कसूर करेगी जभी तो कहूंगी वासे ––– पर ये मरद है न, लुगाई को अपनी जागीर समझे है, जब चाहे जोर - जुलम करले । इनसे कौन कछु कह सके है ? वा दिन ऐसा कछु भी तो नाय हुआ था –––

हरखू खेत से लौटा था और आँगन में खटिया पर पडा बीडी पी रहा था। तुलसी वहीं तिबारे में चाय बना रही थी तभी जग्गू और रामोती लडते हुए वहाँ आ पहुँचे थे।

– 'रे जगुआ, ले अपने बापू को चाय का गिलास तो घेंता (पकडा) दे भाया। '

– 'माई, मोए फैले रामोती से लैमन चूस की गोली दिला।' जग्गू ने मचलते हुए कहा था।

– 'रामोती, लाली दे दे भाई को। के है तेरे पास ?'

– 'न माई, मै नाय दू । मैं लाई हूँ । मोकू बिमला ने दी है। मैं याकू क्यो दूँ ?' उसने जीभ निकाल कर जग्गू को चिढा दिया था।

– 'ले भाया, फैले चाय घेता दे, सीरी हो जाएगी । पाछे ले लीजो लैमन

चूस।' तुलसी ने ग्लास आगे सरकाते हुए कहा। वह खुद सब्जी छौंकने लगी थी।

तभी अचानक वह घट गया जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। नहीं तो क्या वह स्वयं उठ कर हरखू को चाय नहीं पकडा देती ? रामोती से लैमन चूस छीनने में जग्गू का पैर चाय के ग्लास मे लग गया और वह लुढक गया. चाय फैल गई।

'– ये के किया भाया ? बापू को तो के चाय नाय पैताई और भरा गिलास दुला दियो। नैंक काम नाय होय तोरूं ––– तू भौत मनमौजी हो गया है ––– ठैर मैं अभी दिलाऊं तोकू लैमन चूस –––' तुलसी क्रोध में भरी उठी।

चाय फैलने से जग्गू सहम गया था। वह वहाँ से भागना ही चाहता था कि तुलसी ने उसे पकड लिया। वह उसे पीटने लगी – 'काउ काम कहबे से नाय करै ––– सारा बखत धींगा – मस्ती में लगा रहै –– ठैर. अभी दिलाऊ तोकूँ लेमन चूस।' रामोती भय से पीली पडी एक कोने में दुबक गई थी।

हरखू अब तक चुपचाप बैठा यह देख रहा था। जग्गू को पिटते देख वह एकाएक क्रोध से भर गया। तैश मे आकर उसने, जग्गू को मारने के लिए उठा, तुलसी का हाथ पकड कर मरोड दिया – 'भौत देर से देख रहा हूँ हराम जादी, छोरे को मारे ही जा रही है ––– तूने उठ कर चाय क्यों नाय पैंताई ? खुद से काम होवे नाय बस छोरे को पीटे जा रही है राँड –––– के अपने बाप के घर से लाई है याकूँ ? –––– छोरी से नाय कहै कछु ––– घनी देर से छोरे की हड्डी पसली एक कर रही है ––– तेरी तो मैं निकालूँ ––––' उसने तुलसी को जोरदार धक्का दिया। तुलसी का सिर दीवार से जा टकराया। उसकी जीभ कट गई और मुँह से खून आ गया। वह सँभली। पल्ले से उसने मुँह का खून पोंछा। परन्तु हरखू पर तो जैसे भूत सवार हो गया था।

– 'छोरे पै हाथ उठाएगी स्साली, तेरे हाथ तोड दूँगा' उसने तुलसी को लातो से मारना शुरू किया। वह बचने के लिए एक कोने में बैठ गई। हरखू ने उसे वहाँ से खींच लिया और एक जोर की लात जमाई। लात पूरे वेग से तुलसी के पेट पर लगी। वह पेट पकड कर वहीं बैठ गई।

– ' अरी मैया री' ––– मैं मर गई री –––' तुलसी की चीख सुनकर ऊपर छत पर बैठी सास भागी आई। तुलसी को बेहाल देख कर वह घबरा गई ––– 'के हुआ ––– ऐ तू के कर रह्यो है भाया ? तुझे ठीक नाय के कि बऊ पेट से है ––– तू करे के है. या बखत ठौर कुठौर मारा जाए के' ?

अब तक हरखू को अपनी गलती का अहसास हो चुका था। वह लज्जित-सा सिर झुकाए बाहर चला गया, पर उसने कुछ कहा नहीं क्योंकि वह तुलसी की खुशामद तो कर नहीं सकता था, वह भी माँ के सामने। यह उसके बस का नहीं था। यूं भी पत्नी के आगे अपनी गलती स्वीकार करना मर्द के अहम् के विरुद्ध होता है। वैसे भी हरखू ने क्या गलती की ? अपनी जोरू को पीटने का तो वा को हक्क है ––– हो [illegible] कुछ देर में ठीक अपने आप ––– रात में दो मीठे बोल बोल लूँगा। [illegible]

वह गुस्से मे यह क्यो भूल गया कि तुलसी पेट से है । उसे पेट पै नहीं मारना चाहिए था। --- कहीं सचमुच लग न गई हो। वह मन ही मन चिंतित हो उठा और चुप साधे भीतर की आवाजे सुनने की कोशिश करने लगा।

अन्दर से तुलसी के कराहने की आवाज आ रही थी। माँ ने नरस भैन जी को बुलवा भेजा था, वे आती ही होगी।

चलो हो जाएगी थोडी देर में ठीक --- पर स्साली छोरे को कैसे ठोंक रही थी --- सच्च् औरत जात को मार-पीट कर ही काबू में रखना पडे है। तभी वे ठीक रहे है ---- अब नाय उठैगा स्साली का हाथ छोरे पै ----

शहर आ गया था। चौडी सपाट सडक के दोनों ओर दुकानें शुरू हो गई थीं। आगे कोठियो की लाइन थी। इस नई कॉलोनी के बीच से बस भागे जा रही थी।

तुलसी की कराहट अब तक दबी हुई चीखो में बदल चुकी थी। इस समय हरखू से ज्यादा ड्राइवर किशोरी लाल को तुलसी की चिन्ता हो रही थी। जब से तुलसी की तकलीफ ज्यादा बढ गई थी, किशोरी लाल गाडी को बिना कहीं रोके शहर तक दौडा लाया था। रास्तें में खडी सवारियाँ बस रूकवाने के लिए हाथ देती रह गई परन्तु किशोरीलाल ने अनदेखा कर दिया था।

शहर आकर भी जब वह बस को अड्डे की तरफ न ले जा कर दूसरी ओर ले जाने लगा तो सवारियों ने शोर मचाया कि इधर कहाँ जा रहे हो ? बस कहाँ रोकोगे --- अड्डे की तरफ क्यों नहीं चल रहे ? पर किशोरीलाल ने उत्तर नहीं दिया। तब तक बस भी ठिकाने पहुँच चुकी थी। अस्पताल के फाटक पर धूँ --धूँ -- करती बस एक झटके के साथ रूक गई।

– 'ले सम्हाल के उतार ले अपनी औरत को' किशोरी लाल ने बस के नीचे उतर कर एक भरपूर अँगडाई ली। फिर अँगोछे से हाथ और मुँह का धूल पसीना पोछने लगा – 'जल्दी कर, कहीं बस का चालान नहीं हो जाए --- सवारियो को भी देर हो रही है 'हरखू पर आ रहा क्रोध ड्राईवर ने पिच्च् से सडक पर थूक दिया और सीट पर जा बैठा – 'स्साले, जब औरत मरबे को होय तो गाड़ी में डाल कर कहेंगे डिरैवर साब जल्दी करो – ड्रिरैवर कोई मसीन तो है नहीं --- सबन कूं परेसानी मे अलग डाल दिया --- स्साले ने

हरखू ने बडी कठनाई से एक हाथ से तुलसी को सम्हाला और दूसरे में थैला पकडा। पर अस्पताल के फाटक से भीतर का फासला पार करना तुलसी को भारी पड रहा था। उससे एक कदम भी आगे नहीं बढा जा रहा था। उसे लग रहा था कि कहीं वह यहीं न गिर जाए। बडी मुश्किल से वह पेट को दबाए चीखती - पुकारती वह एक बेच पर लेटने को हुई तो उस पर बैठी एक औरत – 'है – हैं' -- करने लगी।

' – भैन जी माफ करना, इसे बहुत तकलीफ हो रही है।' वह औरत तुलसी

को घूरती हुई वहाँ से उठ कर चली गई।

' अजी भैन जी, डाकदरनी साब कितकूँ बैठी हैं ?' पास से गुजरती एक नर्स के पीछे हरखू दौड़ा।

' – अभी डाक्टर साहब आप्रेशन में हैं।

' – यहाँ कितेक देर में आवेगी ?'

' – अभी उन्हें देर लगेगी। तुम उधर बेंच पर बैठ जाओ। उसी के पास वाले कमरे में डाक्टर साहब आऐंगी।' वह नर्स खट् - खट् करती आगे बढ गई।

– ' चल तुलसी, उतकूँ बैठ जा। डाक्दरनी जी उतई आवेंगी।' तुलसी से एक पग भी नहीं बढा जा रहा था। वह तो बस –'हाय मरी री ––– अरी दैया ––– री –––' करे जा रही थी। उसकी हालत देख कर हरखू को एक - एक मिनिट भारी पड रहा था। वह मन ही मन अपने को दोषी ठहरा रहा था। – वा बखत मोकूँ जाने इतना रोस क्यों आया ? ––– मैं याकूँ मारे ही चला गया ––– देखा ही नहीं कि कहाँ मार रहा हूँ और कहाँ नहीं ––– जाने मेरी मति कैसी बिगडी जो पेट पै ही लात जमा दी।

तभी दूसरी सिस्टर को आते देख हरखू उधर लपका – अजी भैन जी, डाक्दरनी साब कितेक मौडी आवेगी? मेरी घरवाली बहुत परेसान हो रही है –––'

सिस्टर हाथ के पैड पर कुछ नोट करती जा रही थी। हरखू की बात सुन कर रूकी – 'कहाँ है मरीज?'

– 'वो बैठी है बैंच पै.'

– 'पर्ची बनवा ली ?'

– ' नही पर्ची तो नहीं बनवाई। – 'तो पहले पर्ची बनवाओ।' वह सिस्टर आगे निकल गई।

हरखू पर्ची बनवाने भागा। तभी उसने देखा कि सामने से डाक्टरनी आ रही थी। उनके पीछे मरीजों की भीड थी। हडबडी में वह पर्ची वहीं छोड डाक्टरनी के पीछे भागा – 'डाक्दरनी साब मेरी घरवाली को देख लो – वह पीडा से तडप रही है। ––– अजी डाक्दरनी साब –––

लेडी डाक्टर ने तीव्र दृष्टि से हरखू को देखा, फिर कमरे के अन्दर दाखिल हो गई। मरीजो की भीड भी कमरे में घुस गई। हरखू तुलसी को लाने के लिए लपका – 'अरी चल जल्दी से डाक्दरनी आ गई।

तुलसी दर्द से बेहाल थी। बडी कठिनाई से उठ कर हरखू के साथ चली। हरखू उसे किसी तरह अन्दर ले कर पहुँचा। पर कमरे में घुसते ही तुलसी को गश

आ गया और वह गिर गई। कमरे में हलचल मच गई। सिस्टर भागी। तुलसी को गिरते देख कर हरखू *हक्का-बक्का रह गया था* – *'अजी डाक्दरनी जी, मेरी औरत* को बचालो। मे। गंगाजी की सौगन्ध खाता हूं कि अब इसे कदी नाय मारुंगा। 'हरखू ने लेडी डाक्टर के पैर पकड लिए।

–'अच्छा, अच्छा, पैर छोडो। मरीज का नाम बताओं। तुलसी का मुआइना करते हुए लेडी डाक्टर ने पूछा।

–'हरखू' घबराहट में हरखू ने तुलसी का नाम बताने के बजाय अपना नाम बता दिया।

डाक्टरनी ने हरखू को घूरते हुए पूछा – *'इसका नाम क्या हरखू हैं ?*

– 'हरखू तो मेरा नाम है, साब'

– 'मरीज का नाम क्या है ?' सिस्टर झल्लाई।

– 'जी, तुलसी।'

– 'बेवकूफ' नर्स धीरे से बडबडाई।

– डाक्दरनी जी, मैं थारे हाथ जोडूँ, पैर पकडूँ। म्हारी घरवाली को बचा लो नहीं तो म्हारे *बच्चे अनाथ हो जावेंगे* —— अजी महाराज, मैं थारा उपकार जिनगानी भर नहीं भूँलूगा।' हरखू ने अपने बहते हुए ऑसू अँगोछे से पोंछे ।

– 'अच्छा, अच्छा ठीक है। यह तो बताओ कि तुम जानवरों की तरह औरत को मारते क्यो हो ?

हरखू चुप्प । वह क्या कहता ?

– ' जब हालत बिगड जाती है तो डाक्टर के पैर पकडते हो ——है न ? ——– देखो इसका आप्रेशन करना पडेगा ——– यहाँ दस्तखत कर दो या अंगूठा लगा दो ——— सिस्टर, आप्रेशन की तैयारी करो ——

आप्रेशन का नाम सुनकर – हरखू धबरा गया – 'ये बच तो जाएगी न ? 'फार्म पर अंगूठा लगाते हुए उसने पूछा।

' हां, पर्ची कहाँ है इसकी ?'

' पर्ची ? हरखू पर्ची बनवाने बाहर भागा। •
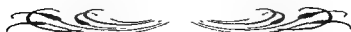
अनवरत

सिर के ऊपर फुल स्पीड से नाचता पंखा मेरी परेशानी बढ़ा रहा था। कभी कोई कागज उड रहा था कभी कोई। मन अत्यधिक अवसादपूर्ण था अत' बार- बार उडते कागजो को सॅभालना अच्छा नहीं लग रहा था। तार उड कर दो बार मेज के नीचे जा चुका था। उठ कर पंखा धीमा करने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी। बहुत कठिनाई से मैं अपने को सम्हाल पा रही थी। पर सम्हालना तो था ही अपने को। इस समय मेरी दृष्टि के सम्मुख केवल तार घूम रहा था और घूम रहे थें उसमें अॅकित तीन शब्द 'ममी इज नो मोर'।

मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि ममी सचमुच नहीं रहीं,. .लेकिन अविश्वास का भी कोई कारण नहीं था पर, रत्नाकर ने तार क्यों दिया ? फोन क्यों नहीं किया ? क्या उसे पता नहीं था कि जब तक तार पहुंचेगा तब तक बहुत देर हो चुकेगी। इस वीराने में संदेश आने तक सब कुछ समाप्त हो जाता है। अब तक ममी की निर्जीव देह भी अनन्त में विलीन हो चुकी होगी। अब तो केवल स्मृतियॉ ही शेष रह गई हैं। ऑसुओ का सैलाब मेरी पलकों में उमडा चला आ रहा था।

ममी बहुत दिन से मुझे बुला रही थीं। उनके प्रत्येक पत्र मे आग्रह होता – तू कुछ दिन के लिए आजा। तुझसे मिलने को बहुत मन कर रहा है। किन्तु हर बार ऐसा हुआ कि मैं चाहते हुए भी नहीं जा सकी। वे काफी दिन से बीमार थीं। उनका दमा बहुत बढ गया था। पिछले कुछ महीनों से तो बिस्तर पकड लिया था। संजीव की भी बहुत इच्छा थी ममी से मिलने की परन्तु उन्हें छुट्टी नहीं मिल रही थी। इस कारण बात टल रही थी। बस कुछ दिन बाद, कुछ दिन बाद में आज का दिन आ गया। यह भाग्य की विडम्बना ही है और क्या ! नाऊ शीं इज नो मोर। एक गहरा विषाद पूर्ण उच्छवास मेरी छाती को चीर कर निकल गया।

काल के इस चक्र को किसने जाना है ? काश ! कोई जान पाता।

पापा के आकस्मिक हार्ट फेल से ममी विक्षिप्त-सी हो गई थी। स्वभाव से अर्न्तमुखी वे मन की अतल गहराइयों में डूब गई थीं। बाह्य संसार से एक दम विमुख वे बडी मन्नतो से पाए दादी के 'कुलरतन' को अब ऑख उठाकर भी नहीं देखती थीं। काफी गभीर स्थिति हो गई थी। दादी, मैं सभी परेशान थे। कितने तो इलाज कराए तब कुछ ठीक हुई थीं। पर पिछले पन्द्रह साल मे पल-पल रीतती चली गई थीं। कुछ नहीं बचा था शरीर में। रत्नाकार ने लिखा था – अब मात्र हड्डियों का ढॉचा भर रह गई हैं।

राजीव साइट पर सूचना मिलते ही आ गए थे। हम शीघ्र ही रवाना हो गए। मैं बहुत व्याकुल थी। पता नहीं कितनी देर मे वहाँ पहुँच पाऊंगी ? खाली चित्त अतीत के अॅधेरों - उजालो में भटकने लगा –

दादी और ममी में हमेशा तेतीरा का योग रहा था। दादी आगे-आगे आग उगलती रहती थीं पर ममी उनके पीछे-पीछे लगी रहती थीं। यह पहला अवसर था जब मैंने उन दोनो को त्रेसठ की मुद्रा मे बैठे देखा । उन विशिष्ठ अतिथियों के सामने दादी ने मुझे अति स्नेह से पुकारा – 'रसमी, बेटा आ इधर तो आना।' एक बारगी मुझे अपने कानो पर विश्वास नहीं हुआ था, क्या यह दादी की आवाज है ? लेकिन उस समय वे वास्तव मे मेरे प्रति स्नेहसिक्त थीं। मेरे लिए यह सुखद आश्चर्य था। फिर दादी का मेरी तारीफ करना, यह तो बिल्कुल अविश्वसनीय-सा था। मैं चकित-सी कभी दादी को देखती और कभी ममी को। तभी मेरा इन्टरव्यू शुरू हो गया था– क्या नाम है ? क्या पढती हो ? क्या-क्या आता है आदि-आदि ? अब मेरी समझ में कुछ-कुछ आने लगा था कि मामला क्या है। अचानक मैं असहज हो उठी। मैंने प्रश्नसूचक निगाह से ममी को देखा, वे मेरी परेशानी समझ रही थीं, बोली – 'देखो, रसोई में माया क्या कर रही है ? उसके साथ चाय भेजो।

'भेजो' यानि मेरी छुट्टी। मैंने अन्दर जाकर मुक्ति की सांस ली।

घर की छत पर झुकी नीम की डाली पर कौवा बैठा काँव–काँव कर रहा था। मुझे अच्छी नहीं लगती बेवक्त की काँव–काँव। दादी कहती हैं कि कौवा बोले तो पाहुने आते हैं। परन्तु पाहुने पहले ही आ चुके हैं। कौवा अब बोल रहा है। दादी से पूछना पडेगा कि इसका क्या मतलब है।

अतिथियो के जाते ही दादी अपने पूर्वरूप में आ गई – सुन लिया न क्या कह गए हैं। उन्हे घर गिरस्ती का काम करने वाली लडकी चाहिए . . कोई लच्छन भी हों इसमे गिरस्तघर की लडकी के? पित्ता मार के दो घडी बैठा ही नहीं गया। बैठती तो कुछ पूछते-ताछते। पर महतारी ने पहले ही इसारा कर दिया – माया के साथ चाय भेज दो क्यो ? इसके हाथ मे मेंहदीं लगी थी जो खुद चाय नहीं ला सके थी अरे कुछ लच्छन सिखाओंगी या अपने जैसा बनाओगी ? बस्स् फर फर अंग्रेजी मे बतियाली समझी हमारी बिटिया बडी हुसियार है

'मॉ, सब सीख जाएगी। तुम यूँही परेशान होती हो। फिर हमे ऐसे घराने में शादी करनी ही कहाँ है ?'

'छन्न' गरम तवे पर पानी पड गया, छींटे पापा के ऊपर पडे।

– 'तूने ही सिर चढाया है दोनों को। क्या मजाल है कोई मेरी बात सुने नौकरी कराना बेटी से, उसकी कमाई खाना।'

– बहू से कहाँ नौकरी कराई जो बेटी से कराऊगा।' पापा ने हँस कर बात टाली।

– अरे नालायक हँसता है। मैं नहीं होती तो बहू नौकरी ही करती। घर में कौवे बोलते।

अन्ततः – शैल हल्दिया/70

– दादी, तब तो रोज मेहमान आते। है न ?' ममी ने मुझे आँखों से बरजा।

दादी हमेशा इसी तरह जली कटी कहती रहतीं। ममी सदा चुप रहतीं थी।, कभी प्रतिवाद नहीं करतीं। वे दादी की वाणी के सारे वाणो को मौन की ढाल पर झेल जाती थीं।

– ममी, तुम भी क्या हो ? दादी के जो मन मे आता है कहती रहतीं हैं और तुम चुपचाप सुनती रहती हो। आखिर क्यों? अनुचित बात का विरोध क्यों नहीं करती?

मेरी बात सुनकर ममी फिक् से हँस पडतीं – क्या लाभ होगा मेरे उलट कर जवाब देने का ? मैं एक कहूंगी वे चार सुनाऐंगी। इससे विवाद बढेगा ही ? यह उनका स्वभाव है। बडी हैं कह लेती हैं। मेरा क्या बिगडता है?' मेरे भीतर उफनते क्रोध को वे अपने सहज शान्त स्वर से ठंडा कर देती थीं।

मैं जानती हूँ, ममी ने प्रकटतः कहा कि मेरा क्या बिगड़ता है। पर वास्तव में उनका बहुत कुछ बिगड रहा था। वे अन्दर ही अन्दर घुटती रहीं थीं।,

सच यह है कि दादी ममी को अपने इकलौते बेटे की बहू नहीं बनाना चाहती थीं। और यह बात उन्होनें बहुत बार दुहराई थी। बेटे की जिद के कारण ही वे इस सम्बन्ध के लिए सहमत हुई थीं। पापा ने साफ कह दिया था कि शादी वहीं करूंगा अन्यथा कुँवारा रहूंगा।

ममी से पता लगा था कि जब दादी पहली बार उन्हें देखने गईं, तो उन्हें देखती ही रह गई थीं। सुकुमार, गौरवर्णा, अजन्ता की मूर्ति सी ममी को देख कर कोई भी मोहित हो जाता था। दादी के मन को भी वे इतनी भा गई कि प्रसन्नता के आवेग में उन्होने वहीं पर बेटे को अपनी पसन्द जता दी। बेटा भी खुश। किन्तु कुछ ऐसा हुआ कि अंत में दादी की पसन्द बदल गई। हुआ ये कि ममी के पापा ममी को मिले कप, सर्टिफिकेट आदि पापा को दिखाने लगे – यह कप स्टेट टूर्नामेंट मे बैडमिंटन में शुभा को मिला था .... यह बास्केटबॉल में .... यह सर्टिफिकेट देखिए, शेक्सपियर के ड्रामे में पार्ट लिया था – बेटी क्या नाम था ड्रामे का ?' बेटी उत्तर दे इससे पहले ही वे फोटो दिखाने लगे – यह फोटो देखिए प्रधानमंत्री के साथ खिंची थी ... यह एम०ए० की डिग्री, यूनीवर्सिटी में टॉप किया था .... बहुत ही होनहार लडकी है

– 'हां,हां यह तो पता लग रहा है।' दादी ने बात काट दी। – 'यह भी तो कहिए कि खाना बनाना आता है या नहीं ? घर-गिरस्ती के काम, सिलाई-बुनाई वगैरह कर लेती है या नहीं ? खाली खेल–कूदों से क्या होता है ?'

– 'जी ऐसी बात है, थोडा बहुत सब कर लेती है। अब पढाई खत्म हो गई है। जल्दी सब कुछ सीख लेगी।'

घर वापस आकर दादी ने निर्णय दिया कि उन्हे लडकी पसन्द नहीं आई।

उनकी भतीजी की ननद की लडकी सब काम-काज में होशियार है। पढी भी है दसवीं ग्यारवीं तक। वे वहाँ बात करेगी।

यह सुनकर पापा स्तब्ध रह गए— लेकिन माँ, वहाँ तुम्हे लडकी पसन्द आ गई थी, अब क्या हो गया ?

— हो क्या जाएगा ? अब पसन्द नहीं है। ऊपरी सुन्दरता से क्या होता है? काम—काज उसे आता नहीं है। तू मना कर देना उनसे।

— परन्तु माँ, मै उनसे 'हाँ' कर आया हूं। अब वहीं शादी करूंगा अन्यथा कुँवारा रहूंगा।

बेटे का निश्चय देख कर दादी बेहद बौखलाई। उनके व्यंगबाणों का अन्त नही रहा — ब्या से पहले ही जादू कर दिया, ब्या के बाद क्या होगा ? राम जाने। जादूगरनी आ रही है पल्ले से बांध कर रखेगी आदि—आदि।' वे रह रह कर बिफरती रहीं।

अजीब संभ्रम की स्थिति थी तब। माँ-बेटे अपने-अपने हठ पर अडिग थे। कई दिन शीत युद्ध चलता रहा। पापा अविचल रहे। अंततः शादी वहीं हुई।

फिर वह दिन जब ममी का पहली बार पाक-शास्त्र ज्ञान परखा गया। नई-नवेली दुल्हन जिसने मायके में कभी दूध भी गरम नहीं किया, उसे नादिरशाही फरमान मिला — 'बहू आज खाना तुम बनाओगी।' ममी जैसे आसमान से गिरीं। बितर-बितर दादी का मुंह देखने लगीं। मुंह से निकला — 'जी मैं ?'

— हाँ तुम। मेरा मुँह क्या देख रही हो? माँ ने खाना बनाना नहीं सिखाया?'

वे क्या कहतीं। विवाह को पन्द्रह दिन भी नहीं हुए। दो दिन पहले मेहमान विदा हुए हैं। यह गनीमत रही कि मेहमानों के सामने खाना नहीं बनवाया। शादी इतनी जल्दी मे हुई थी कि उन्हें कुछ सीखने का मौका नहीं मिला। सोचा था, इस बार अवश्य सीख कर आऊंगी पर अब।

— क्या बनेगा ? धीरे से पूछा।

पापा ने सुना, बोले — माँ, अरऽरऽर तुमने अभी से काम पर लगा दिया।

— क्यों, तुझे क्या ? बीबी का बडा दर्द आ रहा है, माँ का तो कभी ख्याल नहीं आया ?'

— भई, मैंने यूँही कह दिया, और तुम बुरा मान गई। तुम्हारी बहू है जैसा चाहे कराओ अरे सुनो, एक कप कॉफी मुझे दफ्तर में दे जाना।

— जी'

कॉफी लेकर मम्मी दफ्तर में पहुँची। उनकी इस घोर समस्या का वहाँ समाधान प्रस्तुत था। पापा ने लिख रखा था– दाल धोकर प्रेशर कुकर मे ऐसे बनाना, चावल भगौने भर पानी में ऐसे, सब्जी कढाही में ऐसे, आटा इस तरह गूँध लेना, रायता इस तरह सलाद भी काट लेना। -- कुकर बंद करना आता है? आटा गूँधना?

मम्मी पढ कर कुछ बोल नहीं पाई, टप–टप–टप–टप मोती झरने लगे। वे बेहद लज्जित थी कि मुझे कुछ नहीं आता, क,ख,ग भी नहीं और तुम इतना कुछ जानते हो। पापा ने समझाया--घबराओ नहीं, धीरे-धीरे सब आ जाएगा। इस समय आई समस्या से निबटो।

किसी तरह खाना बना। किसी का पेट उससे नहीं भरा। दादी ने एक कौर खा कर थू-थू कर थाली परे सरका दी। कहना न होगा, इस परीक्षा मे मम्मी को जीरो मिला।

औरत के बस दो ही काम होते है– घर के काम काज करे और बच्चे पैदा करे। मम्मी दोनों ही क्षेत्रों में असफल हुईं। घर-गिरस्ती के काम मे तो वे फेल हो ही चुकी थीं, दूसरा मोर्चा भी वे नहीं पास कर सकीं। बस एक बेटी को जन्म देकर छुट्टी। जो एक बेटे को जन्म न दे सके उस औरत को क्या कोई पूजे ? अगर वे बेटी की जगह बेटा पैदा करतीं तो पुजतीं, परन्तु अब ताने सुनने पडते थे।

– ऐसी जली कोख है, एक बेटी मे ही सूख गई। एक 'कुलरतन' तो पैदा करती बिना पुत्तर के बंस कैसे चलैगा भागवान औरत के ही बेटे होवै हैं और जाने क्या-क्या।

दिन-रात यह सुन-सुन कर कभी उनके मुँह से निकल ही जाता– 'माँजी, ऐसा क्यों कहती हैं ? अब बेटा नहीं हो तो मैं क्या करूं ? और बेटी क्या बुरी लगती है ?' उनके नेत्र छलक जाते। मम्मी की आँखो में आँसू देख कर दादी और अधिक भडक जातीं-- 'खबरदार जो मेरे आगे टसुए बहाए ये छलछंद अपने मरद को दिखाना, मुझे नहीं । वो ही तेरे इन परपंचों पै रीझैगा '

मम्मी कमरे में आकर हिलक-हिलक कर रोने लगतीं–हे प्रभु, यह किस जन्म का बदला ले रहे हो ? मैने उनका क्या बिगाडा है? हे भगवान् रश्मि को तो ऐसी सास न देना।

आठ साल की मै उस समय इसको ठीक से समझनें में असमर्थ थी, लेकिन मम्मी के अन्तरतल की घनीभूत पीडा की मैं सदा साक्षी रही हूं।

यह मुझे बहुत बाद में मालूम हुआ था कि पापा ने अपनी शादी से पहले मम्मी से स्पष्ट कह दिया था– माँ की इच्छा के विरूद्ध तुमसे विवाह करने को कृत सकल्प तो हूँ , लेकिन एक बात बता दूं – माँ का स्वभाव बहुत तेज है। उनके साथ एडजस्ट करना होगा। कर सकोगी ? इस हालत मे जब कि वे तुम्हे नापसन्द कर चुकीं हैं

मैं कभी भी कोई शिकायत नहीं सुनना चाहूंगा। अभी अच्छी तरह विचार कर लो।' मम्मी ने कोई विचार नहीं किया। बस अपनी सघन पलकों को झुका कर मौन स्वीकृति दे दी थी।

मम्मी स्वभावत शान्त, गंभीर और सहनशील थीं। पर जब कभी दादी की कटूक्तियाँ सीमा पार कर जातीं थीं तो उन की सहनशीलता भी जवाब दे देती थी। उस समय वे कमरे में आकर कृष्ण जी की तस्वीर के आगे खूब रोतीं – हे प्रभु यह मुझे किस पाप की सजा दे रहे हो ?

पापा देख लेते तो वे उन्हें खूब समझाते थे, सांत्वना देते थे। ऐसे ही किसी अवसर पर उन्होंने कहा – तुम माँ के केवल तानों से इतनी आहत हो जाती हो ? कल्पना करो उस स्त्री की जो जीवन भर सास, बुआसास और पति सब के द्वारा प्रताडित होती रही हो। बुआ तो इतनी क्रोधी थीं कि प्राय. जलती लकडी से ही माँ को मारने लगती थीं। कितनी ही बार माँ को बचाने के प्रयास में मैं पिटा हूँ और जला हूँ। माँ के जगह-जगह जले शरीर को देख कर उस समय मेरी क्या दशा होती थी आज मैं तुम्हे बता नहीं सकता। उस पर भी जब पिताजी दौरे से लौट कर आते तो बुआ शिकायतों, उलाहनों का पुलिंदा खोल कर बैठ जातीं थी। फलत. पिताजी अपना क्रोध माँ को पीट कर निकालते थे। . शुभा, तुम माँ की उस यातना का अनुमान भी नहीं कर सकतीं। उन्होंने दुहैरी पीडा भोगी है . ..... अब वे सास के रूप में अपना दमित आक्रोश तुम्हारे ऊपर निकालतीं हैं, और इसे वे अपना अधिकार समझती हैं . .यातना का यह अनवरत क्रम सदियो से पीढी दर पीढी चला आ रहा है .... मैं जानता हूँ कि यह परम्परा एकदम अनुचित है। लेकिन मैं माँ को किसी भी तरह ठेस नहीं पहुंचाना चाहता।

यह सुनाते हुए पापा का गला भर्रा जाता और पलकें भीग जातीं थीं। मम्मी यह सब सुनकर एकदम सहम-सी गई थीं। इसके बाद मम्मी की आँखों में आँसू नहीं देखे गए।

ढेरों अन्धविश्वासों में जकडी दादी अट्ठारहवीं सदी की प्रतिमूर्ति लगती थीं। पच्चीस वर्ष शहर मे बिताने के बावजूद वे शहरी सभ्यता से रंचमात्र भी प्रभावित नहीं हुई थीं।

मम्मी अस्पताल जाने के लिए निकलीं कि सामने से बिल्ली निकल गई। बस फिर क्या था – 'सत्यान्यास जाए ससुरी का, इसे इसी बखत मरना था।' चल बऊ भीतर चल'। वे मम्मी को वापस घर के अन्दर ले गईं – 'हे राम, हे दयानिधान किरपा करना –' वे बार-बार अदृश्य के सम्मुख हाथ जोडती रहीं। उधर मम्मी दर्द से बेहाल।

पापा बिगडे – 'यह क्या तमाशा है ? अभी कुछ गडबड हो गई तो ? कुछ नहीं बिल्ली-विल्ली। चलो उठो।'

शंकित मन से दादी ममी को अस्तपताल लेकर गईं। बाद में बहुत दिन तक झींकती रहीं – पहले ही असगुन हो गया था. सारे लच्छन लडके के थे। ये जाने कहाँ से आ गई ? कमबखत बिल्ली को उसी टैम मरना था।

परिवार चार जनों तक सीमित रह गया। दादी का झींकना बढता गया। मेरी उम्र के बढते हर साल के साथ परिवार के बढने की संभावना मिटने लगी। पोते का मुंह देखने के लिए दादी ने कोई कसर नहीं छोडी – पीर, फकीर, ओझा, पंडित सब से पूछ कर सारे उपाय करा लिए। सब निष्फल।

दादी 'कुल रतन' 'कुलरतन' रटती रहतीं, और समय-असमय अपना गुबार ममी पर निकालती रहती थीं। उनका अटल विश्वास था कि बेटे को जन्म दिए बिना औरत का जन्म सफल नहीं होता। कुल नहीं चलता। माँ बाप को गति नहीं मिलती। बेटे बिना सब कुछ निस्सार। परन्तु ममी को बेटा न होने का जरा भी दुख नहीं था। वे मुझे ही बेटा मानती थी। रत्नाकार के होने पर उन्हें विशेष प्रसन्नता नहीं हुई थी। पापा के सामने कभी बात होने पर वे कहतीं कि रश्मि को मैंने क्या बेटे से कम समझा है ?

'रत्नाकार' के होने पर दादी की प्रसन्नता का पार नहीं था। भगवान ने आखिरकार उनकी मनोकामना पूर्ण कर ही दी। सत्रह साल बाद पोते का मुंह दिखाया था। वे तो एक दम निराश हो चुकीं थीं।

पोते होने पर उन्होनें बडे जोर-शोर और उल्लास से उत्सव किया था। उन्होंने उसका नाम रक्खा 'कुलरत्न'। पापा ने स्कूल में नाम लिखाते समय कुलरतन से रत्नाकर कर दिया था।

दादी रत्नाकर को पलभर के लिए भी आँख से ओझल नहीं होने देती थीं। हर तरह उसका लाड-दुलार करतीं। उसके उबटन लगातीं, काजल के टिमकने लगातीं कि कहीं उनके कुलरत्न को किसी की नजर न लग जाए।

अब सब कुछ अतीत के गर्भ में समा चुका था।

रश्मि ने ठंडी साँस ली। एक युग बीत चुका था। अब न पापा हैं, न दादी और ममी तुम भी चली गईं छोड कर.. रश्मि फूट-फूट कर रोने लगी। संजीव ने उसे ढाढस दिया। जब वे पहुँचे तो हवन समाप्त हो चुका था। पंडित जी कह रहे थे – कौन यहाँ रहता है ? सभी को एक न एक दिन जाना है। जीवन-मरण का यह चक्र अनवरत चलता रहता है –

सर्वास्त्यक्त्वा संगच्छनैः शनैः
सर्वद्वन्द्व विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते।
ओ ऽ म् शान्ति – शान्ति .... .शान्ति। ●

वापसी

ट्रेन पहुंचने मे केवल पन्द्रह मिनिट रह गए थे। वह बैठे-बैठे थक गई थी। उसने एक अंगड़ाई लेकर आलस्य तोड़ा। मुन्ना सीट पर सो रहा था। उसने सामान पर एक दृष्टि डाली, सब ठीक-ठाक था। लो अब दस मिनिट ही रह गए। उसने ब्लाऊज में खुसे रूमाल को निकाल कर चेहरा कस कर पोंछ लिया। मटमैला रूमाल काला हो गया।

गाडी छुक-छुक छक-छक करती तीव्र गति से भागी जा रही थी, परन्तु उसका मन उससे भी तीव्र गति से उडा जा रहा था।

वह दो साल बाद मायके जा रही थी ---- लम्बे दो साल। उसे लग रहा था न जाने कितने बरस बीत गए माँ और बाबू जी से मिले हुए।

विवाह के बाद दो तीन बार तो माँ ने उसे जल्दी-जल्दी बुलाया था। लेकिन इधर डेढ साल से न जाने क्या हो गया था। उन लोगों ने झूठे से भी बुलाने के लिए नहीं लिखा। वह मायके की हर चिट्ठी को बडे उत्साह से खोलती कि इस बार अवश्य उसे बुलाने के बारे मे लिखा होगा पर उसे हमेशा निराश ही होना पडा। कई बार पढने पर भी उसमे उसे निमन्त्रण का तनिक भी आभास नहीं मिलता था। पत्र की हर पँक्ति मात्र औपचारिकता से पूर्ण होती थी। उसका मन डूब जाता।

मुन्ना डेढ साल का हो चला था। उसे देखने की भी उन लोगो को कोई लालसा नहीं थी, नहीं तो मुन्ना के बहाने उसे बुला नहीं सकते थे क्या ?

उसकी यह मन: स्थिति पति से छुपी नहीं थी। नरेन्द्र देख रहे थे कि वह घर मे घुट-सी गई है। उसका हर समय कुम्हलाया चेहरा देख कर वे कुछ चिंतित भी हो गए थे। वे चाहते थे कि उसे लेकर थोडे दिन के लिए कहीं घूम आएँ। परन्तु व्यवसाय

की व्यस्तता में उन्हें अवकाश नहीं मिल सका। उन्हे एक राह सूझी। उन्होने उससे कुछ दिन के लिए मायके हो आने के लिए कहा। इस प्रस्ताव से पलभर के लिए उसका चेहरा खिल गया. पर तुरन्त उस पर अवसाद घिर आया – 'क्या करूगी जाकर. उन्होने बुलाया थोडे ही है।'

– ' तो क्या हुआ ? माँ के पास ही जाओगी किसी गैर के पास नहीं। किसी कारण यदि वे नहीं बुला सके तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुम स्वयं भी उनसे मिलने नहीं जाओ।'

– नरेन्द्र उदार विचारों के थे। उन्हें व्यर्थ के दिखावे और ढकोसले पसन्द नहीं थे, अत: उन्होंने तुरन्त उसका प्रोग्राम बना दिया। बाबू जी को उसके पहुंचने का तार दे दिया गया।

गाडी की रफ्तार कम हो गई थी। अजगर सी लहराती फुंफकारती गाडी के प्लेटफार्म से लगते ही वह उत्साह में भरी खिडकी से झाँकने लगी। प्लेटफार्म पर रेल-पेल मची हुई थी। इस भीड में दूर से आता हर अधेड आदमी उसे बाबूजी लग रहा था। पांच मिनिट के स्टौपेज में वह तीन मिनिट तक तो इसी भ्रम में फँसी बाबू जी को देखने का असफल प्रयत्न करती रही। अन्त मे निराश होकर उसने कुली को पुकारा।

उसका मन डूब गया। कई दिन से संजोया गया उल्लास इन कुछ पलो में एक दम उड गया। उसके पैर शिथिल हो रहे थे और मन रूआँसा। उसे नरेन्द्र पर क्रोध आया कि यूं ही जबर्दस्ती भेज दिया।

ट्रेन से उतर कर मुन्ने को गोद में लिए-लिए और कुली पर निगरानी रखते हुए बाहर तक आने में उसे अथक परिश्रम करना पडा था।

किन्तु इस निराशा के बावजूद उसके मन के किसी कोने में अब भी प्रसन्नता की किरण छुपी हुई थी। आखिर वह अपने शहर में, आई थी। उस शहर में जहाँ की स्मृति विवाहित लडकी के मन में प्रसन्नता का संचार कर देती है।

उसकी दृष्टि कुछ नया देख पाने की आशा में इधर-उधर घूमने लगी। कहीं कोई विशेष परिवर्तन नहीं था। सब कुछ वैसा ही था। जैसा उसने दो साल पहले छोडा था। शहर अपने संपूर्ण विस्तार में फैला उसी जगह अवस्थित था। स्टेशन से घर तक जाती हुई सीधी-सपाट सडक। उस पर बाईं ओर पडने वाला गिरजाघर अपनी ऊँचाइयों के बावजूद सदा की भांति शान्त और नीरव था। उसके आगे छुट-पुट दुकानों का बेतरतीब सिलसिला। सब कुछ पहले जैसा ही था।

अब वह अपने मुहल्ले में आ चुकी थी। मुहल्ले मे भी उसे विशेष नयापन नजर नहीं आया। हॉं, बेतरतीब जीर्ण-शीर्ण मकानो के बीच में दो तीन नए मकान बन गए थे, जो टाट मे लगे मखमली पैबन्द से अलग ही झाँक रहे थे। उधर सामने उसका

मकान दिखाई दे रहा था। बहुत समय बाद अपने मुहल्ले में आने की सुखद अनुभूति उसके शरीर को रोमांचित कर गई। यह वही जगह थी जहाँ उसके बचपन की कोमल अनुभूतियाँ सुरक्षित थी।

सामने मे रिक्शा रूकते ही वह पहले स्वयं उतरी फिर उसने मुन्ना को उतार कर खड़ा किया। रिक्शेवाले को पैसे दिए। आहट सुन कर बाबूजी ने खिड़की से झाँका। वे दूर से उसे पहचान न सके। उसके आने की कोई संभावना भी तो नहीं थी। शीघ्रता से रसोई मे जाकर पत्नी से बोले –'देखो तो, अपने यहाँ कोई स्त्री अपने बच्चे के साथ आई है।'

इतनी देर में वह अन्दर आँगन में आ गई थी – जीजी आ गई जीजी आ गई मॉं देखो जीजी आई है मॉं चकित सी बाहर आई। उसे देख कर मॉं और बाबूजी विस्मय से कुछ क्षण के लिए अवाक रह गए। मॉं को जैसे अभी भी विश्वास न हो रहा हो – 'अरे मधु तू ऽऽ' और एकदम उसे गले से लगा लिया। इतने दिन बाद बेटी से एकाएक मिल कर उनकी ऑंखे टपाटप टपकने लगीं थी। मधु भी रो रही थी। उसे रोता देख कर मुन्ना भी रोने लगा था।

– 'ओ . ओ . . . ..रोते नहीं हैं। चलो .. .चलो तुम्हें तमाशा दिखाएं ' प्रीति मुन्ना को गोदी में उठा कर ऊपर ले गई। उसके पीछे बिट्टू भी चल दिया।

– 'चलो अब अन्दर तो चलो' बाबू जी ने सामान उठाते हुए कहा।

– 'तूने खबर भी नहीं दी। अकेली ऐसे ही चली आई।'

– 'तुम तो बेटी को ब्याह कर एकदम भूल गईं। मेरा मन किया मैं चली आई।' उसने मान भरा उलाहना दिया।

– 'ऐसे कैसे सोचती है पगली। मैंने कुछ दिन पहले ही तेरे बाबूजी से कहा था कि मधु को जाकर ले आओ

– 'मेरा तार नहीं मिला क्या ?' बात काटते हुए उसने पूछा।

– 'नहीं तो'

– 'तभी ! मै सोच रही थी कि बाबूजी स्टेशन क्यों नहीं आए।'

– 'तू थक गई होगी। हाथ मुँह धोकर कपडे बदल ले . नहाना है क्या ?' फिर बाहर की ओर उन्मुख होकर मॉं ने पुकारा– प्रीती ऽऽ रजना कहॉं हो दोनो जीजी के लिए चाय तो बनाओ।'

बच्चे मुन्ना को लेकर ऊपर छत पर चले गए थे। मॉं की आवाज सुन कर

नीचे आ गए। रंजना चाय नाश्ते की तैयारी मे जुट गई।

मधु ने कपड़े निकालने के लिए संदूक खोला। ऊपर ही सब के लिए लाई हुई सौगाते थी। उसने सामान फैलाया। प्रीति व बिट्टू पास में सरक आए।

– 'जीजी चाय नहा कर पिओगी या ले आऊ ?' रंजना ने आकर पूछा

– 'जरा देर ठहर। नहा लूँ पहले। देख तेरे लिए यह साडी लाई हूँ।

– 'मेरे लिए ?' रंजना को सहसा विश्वास नहीं हुआ – 'बहुत सुन्दर है।'

प्रीति के लिए सलवार कमीज के तथा बिट्टू के लिए पैंट बुशशर्ट के कपडे थे। बिट्टू के लिए दो 'गेम' भी लाई थी। बिट्टू गेम देख कर बडा खुश हुआ। वह तो अपना सामान उठा कर अपने साथियों को दिखाने भाग गया।

प्रीति कुछ उदास हो गई थी। रंजना तो अपनी साडी तुरंत पहन लेगी, लेकिन उसके कपडे न जाने कब सिलेंगे ? उसकी निगाहें रंजना की साडी पर जमी थी। बार बार उसे उलट-पलट कर देख रही थी। रंजना ताड गई 'लगता है तेरी नीयत इस पर फिसल रही है चल, कभी–कभी तू भी पहन लेना।'

– 'सच जीजी पहन लूँ क्या ? बहुत अच्छी है।'

– 'अभी पहनेगी क्या ? कहीं जाए तब पहनना।' मधु को लगा कि उसे प्रीति के लिए भी साडी ही लानी चाहिए थी। उसने कहा –'प्रीति तुझे साडी चाहिए तो मेरी साडियों मे से पसन्द कर ले।' मधु ने अपनी साडियाँ पलंग पर फैला दीं।

प्रीति अब मधु की एक-एक साडी देखने लगी।

– 'बडी सुन्दर-सुन्दर साडियाँ हैं तुम्हारे पास और यह मेकअप बॉक्स। छोटी जीजी देखा '

माँ ने डाँटा – 'चलो रक्खो सब, उसे तैयार होने दो।' फिर वे मधु से बोली – 'तूने इतना खर्चा क्यों किया? कुछ सोचना तो था। अब प्रीति के लिए साडी रहने दे, कपडे ले तो आई।'

' तो क्या हो गया माँ। शादी के बाद पहली बार दे रही हूँ। मैं फिर कब–कब दूंगी इन लोगो को।'

' अच्छा चल अब सामान समेट। प्रीति पीछे पसन्द कर लेगी। तू जल्दी से नहा ले।'

मधु नहाने चली गई। मुन्ना, जो उसके सामान से खेलने में उलझा हुआ था, उसे जाते देख कर रोने लगा। प्रीति पुचकार कर ,उसके हाथ मुँह धोने ले गई तो वह

और जोर-जोर रा रोने लगा। नई जगह मे उसे अजीब-सा लग रहा था। जैसे-तैसे प्रीति ने उसे कपडे पहनाए।

मधु नहा कर आ गई थी। अब वह ताजा महसूस कर रही थी। उसने प्रीति से मुन्ना को लेकर चुप कराया।

रंजना चाय ले आई थी – साथ में नमकीन और बर्फी थी। बाबू जी सब्जी लेने गए हुए थे तभी सब्जी लेकर आ गए थे – 'अरे चाय बनी है क्या ? हमें भी एक प्याला चाय देना।' रंजना ने बाबूजी को चाय का कप पकडाया।

चाय पीते हुए बाबूजी को ध्यान आया। कमीज की जेब से तार निकाल कर माँ को दिया – 'यह लो, मधु आ रही है उसका तार आया है।'

बाबूजी के इस मजाक पर सब लोग खिलखिला पडे – 'मैं बाजार जाने के लिए निकला था कि तार वाला आ गया।' चाय पीकर कप उन्होंने रंजना की तरफ बढा दिया। रंजना सब बर्तन समेट कर आँगन में रख आई।

कुछ देर सब लोग हँसते बोलते रहे। बिट्टू व प्रीति मुन्ना में व्यस्त थे। मुन्ना भी अब उन लोगों से हिल मिल गया था – 'मुन्ना पापा कैसे करते हैं ? बिट्टू बार-बार पूछ रहा था और मुन्ना नाक चढा कर आँखें मिचका कर पापा की नकल उतार रहा था। सब लोग उसकी इस अदा पर लोट-पोट हो रहे थे।

– देख चल कर, बाबूजी क्या-क्या लाए हैं ? माँ ने रंजना से कहा। रंजना का मन वहाँ से जाने को नहीं कर रहा था – 'अभी जाती हूँ' कह कर वह टाल गई। माँ ने दोबारा उसे आँख का इशारा किया तो उसे उठना पडा।

मधु खुश थी। रंजना के उठते ही वह भी उठ गई – चलो चौके मे ही चलते है। उन सब के रसोई में जाने के बाद बाबूजी घूमने निकल गए।

मधु ने सारा मकान घूम-घूम कर ऐसे देखा जैसे पहली बार देख रही हो। मकान की स्थिति बडी दयनीय हो रही थी। शायद उसमें उसके ब्याह के समय की सफेदी हुई थी। जगह-जगह दीवारों से चूना झड रहा था। रसोई और आँगन का फर्श कई स्थान से उखड गया था। रसोई की टीन की छत वर्षा मे टपकती थी। अत उसका सामान एक तरफ बडी बेतरतीबी से रक्खा था। दीवारे धुँए से एकदम काली हो रहीं थी। सब कुछ मिला कर उसे कुछ ऐसा अहसास हुआ मानो वह खानाबदोशो का घर हो।

– 'सारा मकान कैसा हो रहा है? मरम्मत क्यों नहीं कराते ?' उसने चौके में माँ के पास बैठते हुए पूछा।

– ' हाँ कराऐंगे मरम्मत बस ऐसे ही नहीं कराई।' माँ ने उखडे स्वर मे उत्तर दिया।

– 'और सफाई ? रसोई कितनी गंदी हो रही है। फिर रंजन और प्रीति को लक्ष्य कर वह बोली – 'लगता है तुम लोग घर की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देतीं ?

बडी बहन के इस आक्षेप से वे दोनों सकुचित हो उठीं।

– 'जीजी आपका मकान बहुत अच्छा बना है क्या ?' दस वर्षीय बिट्टू ने उत्सुकता प्रकट की। उसने प्यार से उसके गाल पर चपत लगाया – 'नटखट कहीं का।

कुछ समय के मौन के बाद प्रीति ने पूछा – 'जीजी, जीजाजी कैसे हैं ?'

– 'ठीक हैं' उसने संक्षिप्त उत्तर दे दिया। बिट्टू व प्रीति उसके दोनों तरफ बैठे थे और मुन्ना गोद मे। बिट्टू बार-बार मुन्ना को छेड देता था तो वह माँ से और चिपक जाता था।

– 'अब तो तुम कुछ दिन रहोगी न ?' थोडी देर चुप रह कर प्रीति ने फिर पूछा। इस प्रश्न पर माँ की दृष्टि भी उस पर टिक गई।

– हाँ एक महीने रहने के प्रोग्राम से आई हूँ।

यह सुनकर बिट्टू व प्रीति प्रसन्नता से तालियाँ बजाने लगे थे किन्तु माँ के चेहरे पर चिंता की एक अस्पष्ट रेखा कौंध गई।

माँ को घर की स्थिति में थेगली लगानी पडी। इतने दिन में बेटी आई है, आते ही कैसे उसके सामने उघाडे हो जाएँ। रात के खाने में दो सब्जी और पूरी बनी। नाश्ते के लिए बर्फी आई थी उसमें से दो टुकडे खाने के समय देने के लिए बचा लिए गए थे। मुन्ना के लिए दूध आया। चार दिन का हिसाब जरा सी देर में हाथ से सरक गया। प्रीति व बिट्टू बडे खुश थे कि जीजी के आने से माहौल जरा तो बदला।

रात को खाने के बाद थोडी देर सब लोग बैठे गपशप करते रहे। फिर बाबूजी उठ कर सोने चले गए। कुछ समय बाद माँ भी उठ गईं तो तीनो बहनों का बातचीत का लम्बा सिलसिला चालू हो गया।

रंजना ने एक-एक बात पूछी – जीजाजी क्या करते हैं से लगा कर मुन्ना के होने में क्या-क्या हुआ आदि। मधु ने बताया कि मुन्ना के होने में वहाँ बहुत बडा आयोजन किया गया था। लेकिन उसमे यहाँ से न तो कोई पहुँचा और न ही कुछ भेजा। सब लोगो में इसकी बात बनी तो उसने बाजार से साडी व कपडे आदि मँगा कर यहाँ की तरफ से दे दिए थे। सास-ससुर के सामने उसे काफी लज्जित होना पडा था।

रंजना चुप रह गई। उसे ध्यान था कि उस समय घर में माँ व बाबू जी में काफी झगडा हुआ था। माँ का कहना था कि कपडों के साथ बच्चे के लिए सोने की

नहीं तो चांदी की चीज अवश्य भेजनी चाहिए। मधु के कपड़ों के साथ दामाद के कपडे भी होन चाहिए। बाबू जी ने इतना कुछ के लिए साफ मना कर दिया था। माँ खूब रोई भी पर बाबू जी दृढ रहे कि भेजना हो तो पांच जोडी कपडे और मधु के लिए एक साडी भेज दो। इससे अधिक मेरे पास कुछ नहीं है।

मुन्ना के कपडे घर मे रजना ने सी दिए थे पर इस झगडे में वहाँ कुछ भी नहीं भेजा गया था। वे कपडे अभी भी माँ के पास रखे हैं।

बाबू जी उन दिनो बहुत चिडचिडे हो गए थे। मधु की शादी का कर्जा उतरा नहीं था। उनके रिटायरमेंट मे कुछ महीने ही बाकी थे। उन्हें हर समय यह चिंता खाए रहती थी कि अब कैसे होगा बाबू जी को रिटायर हुए अब साल से ज्यादा हो गया है। किसी दूसरी नौकरी का कोई सिलसिला बैठा नहीं है, सिर्फ पेंशन से जैसे-तैसे गुजर चल रही है।

मधु के पूछने पर रंजना ने यह बात उसे बता दी। सवेरे चाय पीते समय मधु ने बाबू जी से उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा तो वे फीकी सी हँसी हँस दिए – मेरे स्वास्थ्य को क्या हुआ ? ठीक ही हूँ। परन्तु मधु देख रही थी कि बाबू जी बहुत थके-थके से रहते हैं। खिचडी बाल और समय से पूर्व चेहरे पर उभर आए वृद्धावस्था के चिन्हो ने उन्हे अधिक बुढा दिया था।

इधर-उधर की कुछ बातो के बाद बाबू जी नहाने धोने के लिए उठ गए थे।

रात में रंजना से घर की हालत के बारे में जान कर मधु बहुत परेशान हो गई थी। उसे नींद भी ठीक से नहीं आई। मुन्ना ने भी काफी परेशान किया। नई जगह तथा अभ्यस्त सुविधाओं के न होने के कारण वह बार–बार उठ कर रोने लगता था। घर के सब लोग काम में लगे हुए थे। उसका सिर भारी हो रहा था। अत चाय पीकर वह पुन लेट गई, मुन्ना भी अभी सो रहा था।

प्रीति मधु की दी साडी पहन कर स्कूल गई थी। वह फूली नहीं समा रही थी। आज उसे भी सहेलियो पर रौब जमाने का अवसर मिला था। स्कूल से लौट कर वह पडौस में चली गई। शर्मा जी के यहाँ आदम कद आइने मे उसने अपने को देखा। नई साडी पहन कर सचमुच वह बहुत सुन्दर लग रही थी। उसके लम्बे कद पर साडी खूब फब रही थी। अपना रूप देख कर वह गर्वित हो गई।

काफी देर तक सब घरो मे अपनी साडी की प्रदर्शनी करके वह घर आकर लापरवाही से आँगन में पडी झटोला खाट पर लेट गई।

बाबू जी इस समय अपेक्षाकृत गंभीर थे। मधु के आने की खुशी से अधिक अब उन्हे खर्च की चिंता हो रही थी। उन्होनें प्रीति को इस तरह नई साडी पहने पडे देखा तो क्रोधित हो उठे – 'शऊर नहीं है जरा भी। नई साडी खराब नहीं होगी क्या?'

प्रीति सहम गई। धीरे से उठ कर साडी बदलने चली गई। उसे गंदी–सी

साडी पहनते देख कर मॉ फुसफुसाई – 'यह फटी क्यो लपेट रही है ? वह साफ वाली पहन न ।' प्रीति विमूढ सी ताकने लगी – मॉ घर मे वह गदी हो जाएगी।'

– हो जाने दे' फिर स्वर को जरा और दबा कर उन्होने कहा – मधु के सामने जरा ढंग से रह। क्या सोचेगी वह ?'

चार दिन के उल्लास के बाद खुमार उतर गया। रजन, प्रीति और बिट्टू अपने पुराने ढर्रे पर आ गए।

मुन्ना के आने से घर मे रौनक आ गई थी। वह बाबूजी से हिल गया था। वे भी उससे हँस–खेल कर कुछ समय के लिए अपनी परेशानी भूल जाते थे। पर मधु देख रही थी कि इस सब के बावजूद वे हर समय चिंता मग्न रहते है। मॉ भी बुझी–बुझी सी रहती हैं। उसका मन खिन्न हो गया। वह सोचती कि बेकार ही आई।

शाम के भोजन के समय रबडी की कटोरी उसने अपनी थाली में से निकाल कर बिट्टू को दे दी। माँ के आपत्ति करने पर वह बोली – मुझे अजीर्ण रहता है। रोज–रोज मिठाई–पूरी हजम नहीं होती। कल से रोटी बनाना।

उसने माँ से कहा कि वह अपने साथ रजना को ले जाएगी। कुछ दिन के लिए उसे भी सहारा हो जाएगा, तथा उसके संबंध की भी वह कहीं बात-चीत करेगी।

माँ तुरन्त सहमत हो गई। उनके लिए यह प्रस्ताव बहुत सुखद था। आखिर बडी लडकी है। कुछ जिम्मेदारी उसे भी निभानी पडेगी। शादी हो गई तो क्या हुआ? लडकी तो अपनी है।

किन्तु समस्या इतनी ही नहीं थी। रोज के खर्चे की परेशानी बढती जा रही थी। प्रतिदिन मुन्ना के लिए तीन बार दूध चाहिए था, वह यहाँ आकर बीमार हो गया था, अत दवा चाहिए थी। सुबह दस का नोट भुनाओ, शाम होते-होते वह साफ हो जाता था। इस पर भी मॉ अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देना चाहती थी। बाबू जी की चिंता बढती जा रही थी।

एक दिन उसने सुना मॉ बाबू जी से कह रही थीं – 'अब यही बचा है, इसे दे आओ। आखिर रोज के खर्च के लिए पैसे तो चाहिए ही। दूध दवाई सभी कुछ तो है।' मधु ने खिडकी की दरार में से झाँका माँ के हाथ में चॉदी का कुछ सामान था। बाबू जी बुत से खडे थे। आँखे चुराते हुए उन्होंने सामान ले लिया और बिना कुछ बोले चले गए।

मधु सन्न रह गई। उफ। हद हो गई। हालात इतने बिगड गए यह उसने सपने में भी नहीं सोचा था। उसे बेहद पछतावा हुआ अपने आने पर। अब उसकी समझ मे आया कि माँ ने झूठे से भी उसे क्यों नहीं बुलाया। विवशता मे उसकी आँखें छलक आई– मॉ मुझे अब पराया समझने लगी है। मुझसे छिपाव रखना चाहती हैं . . ठीक है। अपनी लज्जा को ढकने का सब को अधिकार है। पर . . पर यह

सब उसके लिए बेहद तकलीफ देह था।

उसने तुरन्त निर्णय लिया। साडी बदलकर माँ से कहा – 'मैं जरा बाजार तक जा रही हूँ। मुन्ना सो रहा है। अभी आ जाऊंगी।'

– 'अरे अकेली कहाँ जाएगी ? थोडी देर ठहर । बिट्टू या रंजना कोई आ जाए तो उसके साथ चली जाना।'

– 'चिंता मत करो माँ। शर्मा जी के यहाँ से किसी को साथ ले जाऊँगी।'

नरेन्द्र को तार देकर जब मधु वापस आई तो उसके मन का बोझ उतर चुका था। उसे लगा कि यहाँ आने की गलती का उसने परिहार कर लिया है।

रात को उसने माँ से कहा – 'इनका पत्र आया है। तबियत ठीक नहीं है। मैं सुबह की गाडी से वापस जाऊँगी।

माँ भौंचक्की रह गई – 'यह कैसा जाना ? तू तो एक महीने के लिए आई थी ,

– 'प्रोग्राम तो यही था। पर क्या करूँ वहाँ भी कोई नहीं है . रंजना को तैयार कर दो। मुझे थोडे दिन सहारा हो जाएगा।' उसकी आँखे भर आई। धोती के पल्ले से उसने आँसू पोंछ लिए।

बाबू जी ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। प्रीति व बिट्टू रूआँसे हो गए। जीजी के आने से जरा-सा बदलाव आया था, फिर वही पुरानी स्थिति हो जाएगी।

मधु ने अपना सामान समेटा। गाडी सुबह जल्दी जाती है अत. उसने रात को ही सब तैयारी करली।

सुबह जल्दी-जल्दी करते जाने का समय हो गया। प्रीति व बिट्टू रोने लगे थे। मधु ने उन्हे गले लगाते हुए ढाढस दिया। उसकी आँखो से भी आँसू बह रहे थे। समय हो चुका था। उसने भरे मन से माँ व बाबू जी को प्रणाम किया।

– ' फिर आना बेटी' माँ के नेत्र भी बह रहे थे। पल्ले से आँसू पोंछतें हुए बोली- अचानक जा रही है। कुछ दे भी न सकी।' और उन्होंने मुडा-तुडा एक बीस का नोट मुन्ना के हाथ मे पकडा दिया। माँ के गले लग कर वह फफक पडी। 'जल्दी करो, गाडी का समय हो गया है।' बाबूजी ने भी चश्मा उतार कर रुमाल से अपनी आँखे पोछ ली।

मधु और रंजना ताँगे पर बैठ गई। •

उलझन

वंदना सडक से गली में मुड गई। उसकी निगाह अनायास ही ऊपर छज्जे की तरफ उठ गई और एक झटके के साथ नीचे भी आ गई, जैसे बिजली का करेंट लग गया हो। वह यहाँ खडा था।

वंदना के शरीर मे एक कंपन सा तैर गया। घबराहट से उसके पैर लडखडाने लगे। उसे लगा कि उस युवक की तीखी निगाहो से उसे मुक्ति नहीं मिलेगी। उस क्षण उसने अपने को टूटता हुआ महसूस किया। पीठ पर लहरता साडी का पल्ला उसने अपनी गर्दन के गिर्द लपेट लिया, मानो साडी को लपेट कर वह अपने को उस धृष्ट युवक की लोफरी निगाहों से बचाना चाह रही हो।

कांपते पैरों को मजबूती से रखती हुई वह आगे बढ़ी। पर उसे लग रहा था जैसे उसका हर कदम पीछे की ओर पड रहा है। माथे पर आया पसीना उसने रूमाल से पोंछा। कुछ आश्वस्त होने की कोशिश की। अब वह अपने घर की सीमा में आ गई थी, जहाँ उसका राज्य था। उसका ख्याल था कि यहाँ उसके साथ कोई गुस्ताखी नहीं कर सकता किन्तु यह उसका भ्रम निकला। ताला खोल कर अन्दर जाते - जाते उसने एक बार पीछे मुड कर ऊपर देखा, वह सिहर गई। माथे पर फिर पसीना आ गया। बडी कठिनाई से इकठ्ठा किया हुआ आत्मविश्वास क्षण भर में लुप्त हो गया।

उसे अपना साम्राज्य धूल में लुटता मालूम दिया। वह मनोहारी युवक उसे अब भी देख रहा था। वंदना तेजी से अंदर घुस गई और भड़ाक से दरवाजा बंद कर दिया। किवाड के सहारे टिक कर उसने अपनी घबराहट कम करने की कोशिश की। फिर पसीना पोंछा। जितनी अधिक वह अन्दर से दृढ होने का प्रयत्न करती उतनी अधिक नर्वस होती जा रही थी। उसे लग रहा था, कि जैसे उसका दम घुट जाएगा। बडी कठिनाई से वह अन्दर तक आई।

पिछले बीस दिन से यह रोज का क्रम बन गया था। वंदना के स्कूल जाते समय यह युवक छज्जे में खडा उसे घूरता रहता था। सुषमा के यहाँ यह लोफर कुछ दिनो से ही रहने लगा था।

वंदना ने कई बार सोचा कि सुषमा से उसके धृष्ट आचरण के बारे में कहे। पर अपनी व्यस्त दिनचर्या में वह आजतक भी वहॉ जाने का समय न निकाल सकी। उसने निश्चय किया कि एक दो दिन में वह अवश्य सुषमा के पास जाएगी।

फ्रिज में से निकाल कर उसने ठंडा पानी पिया। घोर गर्मी के बावजूद वह अब अपने को ठंडा महसूस कर रही थी। उसकी घबराहट दूर हो चुकी थी तथा उसके शिथिल पैरो में भी जैसे जान आ गई थी। तभी उसे स्वीटी और डेजी का ध्यान आया। बच्चियों की याद से उसके अन्दर नई स्फूर्ति का संचार हो गया। जाते-जाते एक ग्लास

ठंडा पानी फिर पिया। अब वह एकदम शांत थी।

स्वीटी और डेजी को सुलाकर नौकरानी चली गई थी। वह ममता भरी दृष्टि से दोनो को निहारती रही फिर झुक कर स्वीटी की पुच्ची ले ली – कैसी प्यारी है मेरी दोनो बच्चियॉं – वह स्वीटी के पास लेटते हुए बुदबुदाई।

तभी अचानक उसे रेखा के पत्र का ध्यान आया जो जाते समय बिना पढे ही उसने पर्स मे रख लिया था। मेज पर से पर्स उठा कर उसने पत्र निकाला –

' मेरी अपनी वंदना'

बहुत-बहुत स्नेह तुझे भी और तेरी दोनों नटखट बिल्लियों को भी..
।

वंदना के चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गई। उसने पत्र तकिए पर फैला लिया और पेट के बल लेट कर पढने लगी –

तू यह जान कर कहीं उछल न पडे कि हम लोग ऊटी जा रहे हैं। रास्ते में तेरी मेहमाननवाजी देखने के लिए रूकेंगे। तू हमेशा न आने का उलाहना देती रहती है। अब देखती हूँ कितनी खातिर करेगी

हुह, मेहमान बडी शैतान है रेखा। ऐसी खातिर करूंगी कि बच्ची, याद रक्खेगी। पत्र मोड कर उसने तकिए के नीचे दबा दिया और रेखा के आने की कल्पना करने लगी।

पर क्या लिखा है उसने ? ऊटी जा रहे हैं .. . . हिल स्टेशन। उसके मन का उल्लास तिरोहित हो गया। विषाद की काली छाया ऑंखों में उतर आई।

ऊटी नैनीताल ऊटी . नैनीताल
वंदना की ऑंखों के सामने नैनीलेक का अथाह जल तैरने लगा

फ्लैट की भीड .. एक तरफ बजता बैंड . हवा मे तैरते हुए गानो के स्वर और झील के नीले जल में झिलमिलाती सतरंगी रोशनियॉं . . ऐसे वातावरण में जैसे सारी फिजा झूम रही थी।

सुधीर को भीड–भाड पसन्द नहीं थी। सो वे लोग देर से वहॉं जाते थे, जब भीड छटने लगती, हवा में तैरते गानों के स्वर मंद पड जाते और बैंड की धुनें बंद हो जाती थी। पर झील में ऑंख मिचौनी खेलती रोशनियॉं तब भी लुकती-छिपती रहती थी। तब तक वे दूर पहाडियों पर घूमते रहते थे।

उस दिन वे दोनों धुंधलका होते ही फ्लैट पर पहुँच गए थे। वह दिन उनका वहॉं अन्तिम दिन था। अगले दिन उन्हें वापस लौटना था।

सुधीर कुछ अनमना हो रहा था। वह किनारे की बेंच पर बैठ कर छोटी-छोटी कंकडी लेक में फेंक रहा था। वंदना अभी और घूमना चाहती थी, उसने कहा भी – 'आओ, कुछ देर और घूमे।' पर सुधीर ने उठने की जरा भी चेष्टा नहीं की। फिर वह भी बैठ गई थी। उस दिन सुधीर जरूरत से ज्यादा गंभीर था बस कंकडियाँ फेंक कर अतल जल मे हलचल मचाने का प्रयत्न कर रहा था। छपाक् छपाक् कंकड गिरता और वर्तुल बनाता हुआ दूर भागने की कोशिश करता, मानो कंकड की चोट से वह घायल हो रहा हो। यह क्रम काफी देर चलता रहा था। वह बोर होने लगी थी, झुंझलाई – 'क्या बात है ? व्हाई आर यू सो सीरियस ? आर यू नौट वैल ?

लेकिन सुधीर ने मानो यह सुना ही नहीं। बैंच से टिक कर उसने आँखे मूंद ली। वंदना आशंकित हो गई कि क्या बात हो गई ? दिन मे तो ये बिल्कुल ठीक थे। अभी वह इसी उधेडबुन में थी कि सुधीर उठ खडा हुआ – ' चलो जल्दी, अभी लखनऊ चलना है।'

वंदना भौंचक्की-सी उसका मुँह देखती रही – 'इस रात मे लखनऊ। कैसे जाऐंगे ?' 'चलो भी' सुधीर-चीख-सा पडा और वंदना का हाथ पकड कर लगभग घसीटने का उपक्रम करने लगा। वह बुरी तरह घबरा गई। उसके मस्तिष्क ने काम करना बन्द कर दिया – क्या हो गया इन्हें ? बताते भी तो नहीं।

होटल पहुँच कर सुधीर निढाल-सा पंलग पर पड गया। उसका चेहरा विकृत होने लगा था। अन्दर की कोई पीडा जैसे कलेजे को चीर कर बाहर आ रही हो।

'..... . . . . सुधीर, तुम्हें क्या हो रहा है ?' वंदना रो पडी। 'डाक्टर को बुलाऊं ?'

'हाँ' कह कर उसने उसका हाथ पकड कर भींच लिया। पीडा असह्य थी। वंदना हाथ छुटा कर भागी।

मैनेजर से जब तक डाक्टर के लिए कह कर आई तब तक उसका सब कुछ लुट चुका था। सुधीर का आधा शरीर पलंग से लटका हुआ था। वंदना एक चीख के साथ बेहोश हो गई।

.. .. उसकी चीख से स्वीटी और डेजी जग गई। स्वीटी रोने लगी।

'मभी क्या हुआ ?' डेजी उसे हिला रही थी। वह पथराई आँखो से डेजी को देखती रही। कुछ चेतना आने पर वह बच्ची को बाहो में भींच कर फफक उठी।

वंदना ने निश्चय किया कि वह रेखा को ऊटी नहीं जाने देगी। ऊटी में ही क्या रक्खा है ? उससे कहेगी कि वे लोग यहाँ दिल्ली में ही उसके पास छुट्टियाँ बिताऐ।

वंदना को हिल-स्टेशन के नाम से डर लगने लगा था। उसे लगता कि वहाँ

के ऊँचे-ऊँचे पर्वत यमराज के दूत है। हिल स्टेशन के आकर्षण मे लोग खिंच कर उन यमदूतों के पजो मे फँस जाते हैं नहीं वह रेखा को किसी भी हालत में ऊटी नहीं जाने देगी।

हुआ भी ऐसा ही। वंदना ने सचमुच रेखा और उसके पति को ऊटी नहीं जाने दिया। रेखा, उसकी अनन्य सखी, उसकी बात नहीं काट सकी। पति को नाराज करके भी उसने ऊटी का प्रोग्राम कैंसिल कर दिया। वह वंदना की इच्छानुसार कुछ दिनं के लिए उसके पास रुक गई। उस दिन रेखा ने वंदना से पूछा – 'क्या तूने यूं ही जिंदगी काटने का फैसला कर रक्खा है ?' यह उसके भविष्य के प्रति बहुत चिंतित थी।

वंदना समझते हुए भी ना समझ बन गई – 'क्या मतलब' ?

–'मतलब साफ है। क्या स्कूल में सिलाई सिखा कर ही तू इन बच्चियों का बेडा पार कर देगी?' रानी, जीवन का सफर बहुत लम्बा और विकट है । अकेले चलना इस पर अत्यन्त कठिन है' तुझे अपने जीवन के बारे में सोचना होगा।

– 'क्या पहेलियॉ सी बुझा रही है ? साफ कह न।' वंदना झुँझला पडी।

– साफ कहने पर तू नाराज होगी। लेकिन कहे बिना चारा भी नहीं है. . तू पुन विवाह के बारे में क्यो नहीं सोचती ?' कहने के बाद रेखा कुछ संकुचित हो उठी जैसे यह कह कर उसने कोई अपराध कर दिया हो।

वंदना की आँखों मे एकदम उस धृष्ट युवक का चित्र कौध गया। वह गंभीर हो गई और उसकी पलके भीग गई। कुछ पल के मौन के बाद उसने भरे कंठ से कहा – यह सभव नहीं है रेखा, तूने ऐसा कैसे सोचा?' उमडते आँसुओ को रोकती हुई वह शीघ्रता से वहाँ से चली गई।

पन्द्रह दिन बाद रेखा चली गई। जाते-जाते उसने एक बार फिर वन्दना को समझाने का प्रयत्न किया। वन्दना ने कोई उत्तर नहीं दिया।

✪ ✪

अभी ग्यारह ही बजे थे। धूप सिर पर चटक रही थी। लू के थपेडे शरीर को झुलसा रहे थे। वदना विचारो मे डूबी-डूबी सी तेजी से सूनी सपाट सडक पर बढी जा रही थी कि एक कार झटके से उसके समीप रुकी। वह चौक पडी।

– 'इफ यू डोंट माइन्ड . प्लीज कम इन'

' वदना ने देखा वह धृष्ट व्यक्ति सुनहरी फ्रेम का गौगल्स लगाए मन्द-मन्द मुस्कुराता हुआ कार का दरवाजा खोल कर उसे बैठने के लिए आमन्त्रित कर रहा है।

उसका मन फुँक गया। . ओफ्। हद हो गई। वन्दना की इच्छा हुई कि चिल्ला-चिल्ला कर भीड इकट्ठी कर ले और और इस महाशय के

जूते पडवाऐ। पर .   . पर वह ऐसा कुछ नहीं कर सकी। उसके मुँह से आवाज तक न निकल सकी। वह अपने को बेहद शिथिल महसूस कर रही थी। उसे लग रहा था कि कहीं वह घबराहट में गिर ही न पडे। उसकी सास धौंकनी--सी चल रही थी। यह हजरत मेरे पीछे कैसे मुँह धो कर मेरे पीछे पडा है। उसने एक विकल दृष्टि राह चलते लोगों पर डाली कि कहीं कोई परिचित तो नहीं है।

'प्लीज   कम   ।' वदना इस दुस्साहस पूर्ण आग्रह से किंकर्त्तव्य विमूढ-सी हो गई। वह सडक पर तमाशा नहीं बनाना चाहती थी, अत झुँझलाती-झिझकती उसके पास कार में बैठ गई। कार मुड कर विपरीत दिशा में जाने लगी तो वह एकदम घबरा गई उफ् । कितनी भंयकर भूल कर बैठी इसके साथ आकर... .... इधर कहाँ जा रहे हैं। वह चीख पडी।

चीं ऽ ऽ करती कार एकदम रूक गई।

' आप घबराइए नहीं । मैं आपको धोखा नहीं दूंगा। पास ही रैस्टुरेंट में बैठ कर कुछ ठंडा पी लेते हैं'। 'नहीं, मैं आपके साथ कहीं नहीं जाऊगी। मैं अपने आप घर चली जाऊंगी।' उसका गोरा मुख तमतमा रहा था। क्रोध से उसकी सास फूल रही थी। तीखी नजर से उसने उस युवक को देखा, जैसे आँखों के तेज से ही वह उसे झुलसा देगी। 'धन्यवाद' उसने शीघ्रता से कार का दरवाजा खोला।

युवक ने झपक कर उसका हाथ पकड लिया। वह सिहर गई। युवक भी अपने दुस्साहस पर लज्जित हो उठा। और तुरत हाथ छोड दिया।

' आप गलत न समझें। चलिए मैं आपको घर ही ले चलता हूँ दरअसल मैं आपसे कुछ बात करना चाहता था।' उसने कार मोड ली।

-- 'बात आप गाडी में भी कर सकते हैं।'

युवक चुपचाप मोटर चलाता रहा मानो वह अपनी बात कहने के लिए शब्द ढूंढ रहा हो-- 'बात यह है . .   मैं . ...मै आपसे शादी करना चाहता हूँ। उसने एकदम कह दिया और गाडी एक पेड के नीचे रोक दी।

वंदना फटी-फटी आँखों से उस दुस्साहसी व्यक्ति को कुछ पल घूरती रही। वह तिलमिला उठी थी-- सडाक्......   उसने युवक के गाल पर एक थप्पड रसीद कर दिया और तुरन्त मोटर से उतर गई।

युवक ने झुक कर उसकी साडी का पल्ला पकड लिया।

-- देखिए, इस समय आप बहुत गुस्से में हैं। आप ठंडे दिल से मेरे प्रस्ताव पर विचार करे। मैं आपकी किसी मजबूरी का फायदा नहीं उठाना चाहता   अगर आप मुझ पर अविश्वास करके पैदल ही घर जाना चाहें तो जा सकती हैं।' युवक ने पल्ला छोड दिया।

वदना ठिठक गई। उसके मन मे रेखा घूमने लगी। रानी, जीवन का सफर बहुत लम्बा और विकट है, तुझे अपने बारे मे सोचना होगा। अभी तक वह मुँह फेरे खडी थी। उसने मुड कर युवक को परखना चाहा– उसके शालीन मुख-मण्डल पर सौम्यता और विनय के अतिरिक्त कुछ न था, धृष्टता तो जरा भी नहीं थी। वंदना को उसे थप्पड मारने पर बेहद खेद होने लगा। वह अपनी हथेलियाँ आपस मे मरोड़ती हुई बोली देखिए, मैं लज्जित हू बात यह है, कि आजकल जमाना बडा '

'मैं जानता हूं। मैंने आपकी किसी बात का बुरा नहीं माना। आइए बैठ जाइए।' गाडी फिर धीमी गति से सरकने लगी थी।

– ' आपका क्रोधित होना स्वाभाविक था।. . मैं सोच नहीं पा रहा था कि जल्दी से कैसे अपनी बात कहूँ। इस कारण मैंने सीधा प्रस्ताव रख दिया।'

वंदना के अंतर में हलचल मची हुई थी। क्या पुन विवाह अवश्यंभावी है ? जब से रेखा गई है, वह इस प्रश्न को लेकर अनेक बार अपने मन से उलझ चुकी है। उसके मस्तिष्क में बार-बार बजता रहता – तुझे अपने जीवन के बारे में सोचना होगा। पर सुधीर जिसे उसने अपने जीवन से भी ज्यादा चाहा। उसे कैसे भूल जाए ? पुनर्विवाह क्या उसके प्यार के साथ विश्वासघात न होगा ? वह गंभीर हो गई। युवक ने उसका ध्यान तोडा –

मैं आपके बारे में सब कुछ जानता हूँ . स्वीटी और डेजी को मैंने कई बार देखा है। बडी प्यारी बच्चियाँ हैं।

वंदना ने अपनी बडी-बडी बरौनियाँ उसकी ओर उठाई। उस पल उसे लगा कि यह जो सामने बैठा है वह कोई देवदूत है जो उसे जीवन की कठिन राहों से बचाकर ले जाना चाहता है।

परन्तु नहीं। यह देवदूत अवश्य है, लेकिन यह मेरी सारी उलझनों को नहीं सुलझा सकता। यह मेरा कौमार्य मुझे नहीं दे सकता . मेरा उत्साह मुझे नहीं दिला सकता नहीं नहीं, मै शादी नहीं कर सकती। वह बुदबुदाने लगी।

युवक ने उसके मनोभाव पढ लिए – आपके स्वर्गीय पति के लिए मेरे मन में बहुत इज्जत है मैं आपकी किसी भावना को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता। आप इस विषय पर खूब सोच लीजिए जीवन का सफर बडा लम्बा है। अकेले ही सारे बोझों को उठाना कठिन होता है। लडखडा कर गिरने का भय बना रहता है, फिर आपके साथ तो दो लडकियाँ भी हैं।

वंदना किंकर्त्तव्यविमूढ थी, बडी कठनाई से कह सकी – 'यह संभव नहीं है। विवाह कोई खेल नही है। यह एक ऐसा सौदा है जो जीवन में एक बार ही किया जाता है।'

'यह आपका भ्रम है। यह सौदा नहीं है अपितु स्त्री और पुरुष के बीच किया जाने वाला समाज द्वारा निर्धारित ऐसा समझौता है जो उनके जीवन के सफर को

सहज बनाता है तथा समाज की परम्परा को जीवित रखता है   एक पक्ष के असमय साथ छोड देने पर दूसरे के साथ उन्हीं शर्तो पर पुन किया जा सकता है . . .   . .पुरूष को, हमारे समाज मे, सदा से इसकी सुविधा थी। हा, स्त्री को समाज ने इसकी अनुमति नहीं दी थी   पर अब मान्यताऐ बदल गई है। कानून ने अब स्त्री को भी यह अधिकार दिया है। वह युग व्यतीत हो चुका है जब स्त्री स्वर्गीय पति की स्मृति मन में संजोए तपस्विनी की भाँति जीवन काट देती थी।'

वंदना चकित सी सुन रही थी   'मैं आपकी बुनियादी कठिनाई समझता हूँ। आपकी भावनाओं का सदा सम्मान करूगा, इसका वचन देता हूं।' युवक ने अपना हाथ वंदना की तरफ बढा दिया।

मोटर कब एक तरफ खडी हो गई थी यह वंदना को पता भी न लगा। वह उलझन में पडी थी। यह युवक बेहद दुस्साहसी भी है। वह क्या उत्तर दे ? क्या इसके प्रस्ताव को स्वीकार कर ले ? रेखा भी तो यही कहती थी।   नहीं .... नहीं, इतनी जल्दी करना उचित न होगा। उसका बढा हुआ हाथ पीछे आ गया।

युवक ने उसकी परेशानी भाँप ली – ' आप सोच लीजिए।' उसने आश्वासन दिया।

–'जल्दी की कोई बात नहीं है   आप संभवत: मेरे बारे में जानना चाहेगी ?'

वदंना ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखा।

मै सैक्रेटेरियट में सीनियर एकाउन्टेंट हू। मेरे परिवार मे मेरी मॉ तथा दो बहने हैं.... एक बहन सुषमा का विवाह हो चुका है, जो आपकी पडौसन है।' कहते ..कहते उसने गूढ दृष्टि से वंदना को देखा।

वंदना विस्मय से उसे देखती रह गई – ओह, यह सुषमा का भाई है। किन्तु यह तो उसके यहाँ अभी डेढ दो महिने से ही रहने लगा है। वह दुविधा में थी कि युवक ने उत्तर दिया –

' मेरी मॉ मेरी छोटी बहन के साथ मौसी के यहाँ गई हैं, इस कारण मैं सुषमा के पास आ गया था। मॉ के वापस आने पर चला जाऊंगा।

वंदना अवाक् विमूढ सी उस देवदूत को देख रही थी जो उसके वीरान जीवन के द्वार पर बहार लिए खडा था। •

पीड़ा

मुर्गे की पहली बॉग पर पार्वती ने खटिया छोड दी। वह कोठरी से बाहर आई। चारो तरफ अँधेरा छाया हुआ था। साढे चार का समय होगा। वह रोज इसी समय उठा करती थी। ऑगन मे आकर लोटे से पानी लेकर उसने हाथ मुँह धोये और चौबारे मे बधी गाय के पास आ गई। गंगा की पीठ पर हाथ फेरा। मूक पशु ने मालिक का हाथ पहचाना। गंगा रभाती हुई उठ खडी हुई। उसने दो-चार बार लाड से मुँह ऊपर नीचे किया फिर अपने शरीर को झिंझोरदिया । गले मे बँधी घटी टनटना उठी। गाय फिर रभाई। पार्वती ने उसकी पीठ थपथपाई। – गगा, उठ गई बेटी। मैं अभी तेरा काम निबटाती हूँ।

पार्वती ने बडे वात्सल्य पूर्वक गगा को देखा। वह बुहारी लेकर चौबारा बुहारने लगी। गोबर तसले में सकेरा। कुट्टी एक ओर कर दी। झाड-बुहार कर चोबारा साफ कर दिया। गगा को बाहर लाकर खूंटे से बाँध दिया। सानी करके उसके आगे रख दी।

इक्की-दुक्की चिडिया चहचहाने लगी थी। पौ फटने को थी। पास के घर से गगाराम बाहर आया। पार्वती ऑगन बुहार रही थी। – 'कौन ? गगाराम' ? – 'हॉ, चाची परनाम.––––– तू तो बडे सवरे उठ जाती है ? इत्ती सिदौसी क्यो उठती है ?'

– 'अरे बेटा अब सिदौस कहॉ ? अब तो दिन निकलने को है। पर तू आज कहाँ जा रहा है, इत्ती सिदौसी ?

— 'आज पहली तारीख है न। मैं नौकरी पर जाऊंगा। आठ बजे पहुँचना है। इस बखत घूमने जा रहा हूँ। चाची तू शिब्बो भैया को भी भेजा कर न घूमने को।''

— 'अरे पगले किसकी कहता है। वो इत्ती सिदौरी कब उठे है ?'' चाची ने एक निगाह शिवराम के कमरे की तरफ डाली। — 'पहले की बात दूसरी थी।'' कहकर चाची ने ठंडी सांस ली।

गंगाराम ने एक मार्मिक दृष्टि पार्वती पर डाली, जिसको, दुखो की मार ने, समय से पहले बुढापे की कगार पर ला खडा किया था, और धीरे-धीरे आगे बढ गया । वह पार्वती के शब्दों के अन्दर छुपी पीडा को समझता था। शिवराम ने शादी होने के बाद अपने व्यवहार से पार्वती को बहुत चोट पहुँचाई थी। गंगाराम पार्वती के बारे में सोचता जा रहा था।

पार्वती दो-चार पल जाते हुए गंगाराम को देखती रही फिर उसने सानी खाती हुई गंगा की तरफ देखा। दो साल पहिले पशुओं के मेले में से गंगाराम ही इसको लाया था। तभी पार्वती ने इसका नाम 'गंगा बेटी' रख दिया था।

दूर पूर्वी क्षितिज में गुलाबी फूटने लगी थी। अभी बहू नहीं उठी थी। पार्वती ने दालान बुहारते हुए उडती निगाह शिवराम के कमरे के द्वार पर डाली। शुरू-शुरू में बहू पार्वती के उठने से पहिले ही उठ जाती थी और जल्दी-जल्दी घर का काम निपटा लेती थी। पार्वती को कुछ काम नहीं करने देती थी। पर वे बाते शुरू-शुरु की थीं। अब तो ब्याह को दो साल हो गए थे। बहू ने धीरे-धीरे घर के सारे अधिकार तो अपने हाथ में ले लिए। लेकिन काम को वह ठेंगा दिखाती थी। सास घर का काम करती और बहू ऊपरी देखभाल तथा खर्चे का लेन-देन।

पुरानी स्मृतियाँ बार-बार पार्वती के मन को झिंझोर रही थी। वह बल पूर्वक उधर से ध्यान हटा कर अपना मन काम में लगाती। पर उसके हाथ रूक-रूक जाते थे। उसे आज बडी देर हुई जा रही थी। अभी ढेरों काम पडा था करने को। रानी जी उठेगी और काम न हुआ तो एक की चार सुनावेंगी।

पार्वती झट से बाल्टी उठाकर दूध दुहने बैठ गई। गंगा उसकी सीधी-सादी बेटी थी इससे उसे औरों की तरह दूध दुहने में ज्यादा बखेडा नहीं करना पडता था। सीधी तरह वह झटपट दूध काढ लेती थी। छुर्–छुर् दूध थन मे से बाल्टी में गिरता हुआ बडी मधुर ध्वनि कर रहा था। पार्वती ने कुछ देर को अपने मन को सब तरफ से हटाकर इस ध्वनि में डुबो दिया। पर उसके अनजाने ही मन उडकर बहुत दूर पहुँच गया। हाथ अभ्यासवश अपना काम करते रहे।

—'अरी पारो, सुनियो जरा' 'आई माँ जी' कहती हुई पार्वती हाथ की बुहारी पटक सास के सामने आ गई जो बैठी गाय का दूध काढ रही थी।

–'यहू नैक इसके पाँव तो बाँध दे। आज ये बडा उधम कर रही है।" सास ने पैर पटकती हुई गैय्या की ओर इशारा किया जो उसे दूध नहीं काढने दे रही थी। गैय्या बडी मरखनी थी इसी से दूध सास को काढना पडता था। बाकी सब तो पार्वती निबटा लेती थी। वह सास को कुछ नहीं करने देती थी और आज उसकी बहू ..
?

आ आं आं गाये के रंभाने से पार्वती का ध्यान टूटा–अरे दूध तो कढ चुका, उसे होश ही न था, वह खाली थनों को खींचे जा रही थी। पीडा होने पर गाय चिल्लाई। बछडे के लिए भी दूध नहीं बचा। पार्वती को बडा दुख हुआ। कैसी गलती हुई उससे ? अब पाढा सारे दिन भूखा रहेगा। खिन्न मन से उसने दूध उठा कर रसोई में रक्खा फिर गोबर लेकर पिछवाडे में थापने चली गई।

बहू उठ गई थी। उसने गोबर ले जाती सास को देखा वहीं से बोली 'पाँव लाँगू' – 'सील सपूती हो, बूढ सुहागन हो' बिना मुडे ही पार्वती ने भी आशीष दे दिया और चली गई। उसकी आँखे छलछला आई। बहू अक्सर ऐसे ही उलाहना डाल देती है। आज उसकी मन स्थिति ठीक न होने के कारण बहू का दूर से उलाहना उतारना, उसे बहुत बुरा लगा।

कितने अरमानों से उसने शिवराम के लिए अपेक्षाकृत संपन्न परिवार की पढी-लिखी सुन्दर बहू ढूंढी थी। बडी धूमधाम से ब्याह किया था। आस-पास में वाह-वाह हो गई थी। सब बहू की तारीफ करते नहीं अघाते थे। स्त्रियां कहतीं –'पारो को हीरा मिल गया है। क्यों न हो बेचारी ने बहुत दुख उठाए हैं। अब बुढापे में सुख देख लेगी। बडी सुशील बहू है'– और पारों के पैर धरती पर नहीं पडते थे। वह गर्व व खुशी से फूली-फूली इधर से उधर डोलती रहती।

शिवराम के पिता उसके बचपन में ही गुजर गए थे। पार्वती ने सिलाई करके जैसे-तैसे शिवराम को पढाया-लिखाया। नौकरी पर लगवाया। उसकी शादी के लिये भी कुछ पूंजी जमा कर ली। खुद आधा पेट खाती लेकिन शिवराम का मन कभी न मारती। वह जो कहता वही मंगा कर देती। खुद फटे कपडे पहिनती लेकिन शिवराम की हर जरूरत पूरी करती। उसी शिवराम और उसकी बहू के बदलते रंग देख कर आज उसे बेहद कष्ट होता है। हाँ, शिवराम भी बदल गया था। ब्याह के बाद बीबी के इशारो पर जो चलने लगा था।

–'दादी, अम्मा ने छाछ मंगाई है।'

–'हॉं क्या ?' पार्वती की तन्द्रा टूटी। उसके सामने लोटा लिए बॉके की लडकी खडी थी।

–'अम्मा ने थोडी सी छाछ मंगाई है।' लडकी ने अपनी बात फिर कही। वह चकित थी कि आज दादी को क्या हो रहा है ? वह कैसे बोल रही है ? पार्वती के

हाथ जल्दी-जल्दी चलने लगे। अभी तो वह उपले ही थेप रही थी। छाछ मे देरी थी। आज उसे क्या हो रहा है, वह स्वंय अपने ऊपर ताज्जुब कर रही थी।

—'अरी चम्पा, अभी छाछ बनी नहीं है। आज मेरा जी कुछ ठीक नहीं है। थोडी देर में ले जाइयो।'

—'क्यों दादी कैसा जी हो रहा है तुम्हारा ? तुम्हारा जी ठीक नहीं है तो तुम काम क्यों कर रही हो? भौजी कर लेगी।'

—'अरी बिटिया, भौजी क्या करेगी ? जा, थोडी देर में छाछ ले जाइयो।' पार्वती ने आखिरी उपला थेपा। गोबर से जगह लीपी। फिर तसले में हाथ धो डाले। पल्ले से हाथ पोंछती हुई बडी मुश्किल से उठी। बहुत देर बैठे-बैठे उसकी कमर अकड गई थी।

पार्वती को जल्दी हो रही थी। उसे जग्गू के लडके के मुंडन में भी जाना था। कल जग्गू की बहू बहुत-बहुत कराम दिला गई थी। वैसे पार्वती ने ऐसे कामो मे आना-जाना छोड-सा दिया है। बहू चली जाती है। लेकिन आज जाना पडेगा।

शिवराम उठ चुका था। आंगन में बैठा हजामत कर रहा था। कभी-कभी एक नजर दही बिलोती माँ पर डाल लेता था। उसे भी आज कुछ देर हो गई थी। रात को नौ के शो में सिनेमा चला गया था सो — सोने मे देरी हो गई। नौ बजते-बजते वह नौकरी पर चला जाता है। एक घंटे का रास्ता है। नमक के दफ्तर में हैड क्लर्क है। बी०ए० करके भी हैड क्लर्की ही मिली। पर गुजर हो जाती है। अब कुछ इधर-उधर भी हाथ मारने लगा है। खर्चा भी तो बढ गया है। कुछ दिन में और भी बढ जाएगा। पहले की बात और थी। अब बिना लिए-दिए काम नहीं चलता।

धूप काफी चढ आई थी। शिवराम जा चुका था। उसकी बहू ने सास को खाना खाने के लिए पुकारा और खाना परोस कर अपने कमरे में चली गई। आज वह सुबह से झुँझला रही थी। रात में पति के देर से आने पर दोनों में झगडा हो गया था। सवेरे सास की सुस्ती से उसे काफी काम करना पडा। इससे उसे बहुत झूँझल आ रही थी। पार्वती से खाना खाया नहीं गया। पानी के सहारे उसने जैसे-तैसे दो-चार कौर उतारे फिर उठ गई।

दोपहर होने को थी। वह झटपट तैयार हुई। जग्गू के घर जाने को पहिले ही देर हो गई थी। चद्दर ओढ, चप्पल में पैर डाला —'अरे यह क्या ? चप्पल तो टूटी पडी है, अब क्या करूं ? — पार्वती सरोपंज में पड गई। कि सोचने लगी कि बहू से चप्पल मागूं या नहीं ? वैसे कभी-कभी वह बहू से कुछ मांग भी लेती थी, लेकिन आज बहू का मिजाज खराब था। अत उसे चप्पल मांगने में कुछ संकोच हो रहा था।

बडा साहस जुटा कर पार्वती बहू के पास पहुँची, दो पल खडे हो कर बोली

– 'बहू मैं जग्गू के घर जा रही हूँ, जरा अपनी चप्पल जोडी दे दो । मेरी टूट गई है।

– 'उंह आपकी कोई चीज कभी ठीक भी रहती है। कभी यह दे दो कभी वह मुझे भी तो जाना है।'

पार्वती जैसे आसमान से गिर पडी। क्या यह उसकी बहू कह रही है ? एक बारगी उसे विश्वास न हुआ। मन के संतोष के लिए फिर पूछा – 'क्या कहा बहू' ?

–'कहा क्या ? मेरे माँ-बाप जो इतना सामान देते हैं वह क्या आपके लिए ? कभी चद्दर चाहिए, कभी साबुन और कभी चप्पल। 'पैर पटकती हुई बहू कमरे से बाहर चली गई।

– 'तुम ठीक कहती हो। गलती मेरी ही है, जो मैं तुमसे चीजे मांगती हूँ। तुम्हारे माँ-बाप मेरे लिए क्यों कुछ देने लगे। अपनी लडकी दे दी यही क्या कुछ

– माँ यह क्या है सब ? क्यो उससे झगडा कर रही हो ? 'शिवराम गरजा। वह नौकरी पर से आज जल्दी आ गया था। उसने सास बहू के बीच कहा-सुनी होते सुनी तो आग बबूला हो गया ।

शिब्बू तू .. ? 'पार्वती अधिक कुछ न कह सकी। उसकी बदलते रूख को वह जानती तो थी। लेकिन बहू का पक्ष ले कर आज पहली बार उसने माँ के सामने मुँह खोला था। वह बहू-बेटे के इस बर्ताव से सकते मे आ गई थी। क्षोभ व लज्जा के कारण उससे और कुछ न कहा गया। भारी कदमों से चुपचाप अपनी कोठरी में आ गई। चद्दर उतार डाली। उसके कंठ से रूलाई फूटी पड रही थी, पर वह बलपूर्वक उसे रोक रही थी। पर आँसू थे कि बार-बार आए जा रहे थे। थोडी देर बाद उसने कोठरी में पैरो की आहट सुनी। पर उसने सिर नहीं उठाया। वैसे ही पडी रही।

–'दादी, दादी .. ... . दादी सो रही हो क्या? अम्मा ने तुम्हे बुलाया है।' पार्वती ने सुना जग्गू का लडका उसे आवाज दे रहा था। लेकिन वह वैसे ही पडी रही। न हिली न डुली। उसे कहीं नहीं जाना था। उसे मर्मान्तक पीडा हो रही थी। अपने अन्तर को दबाए वह निश्चेष्ट पडी रही ।

लडका कुछ क्षण पार्वती के उठने का इन्तजार करता रहा। जब वह न उठी तो चुपचाप चला गया। पार्वती जाते हुए चापों को सुनती रही। •

— शैल हल्दिया —

आगरा के सम्पन्न वैश्य परिवार में आपका जन्म हुआ। पिता श्री शकर लाल जी जसोरिया की प्रेरणा से प्रारभ से ही कला व साहित्य के प्रति विशेष अनुराग बना। माता श्रीमती सुशीला देवी की धर्म व सस्कृति मे विशेष आस्था रही। ये सस्कार भी आपको प्राप्त हुए। विवाह अलवर के प्रतिष्ठित हल्दिया परिवार मे हुआ। पति ब्रजवल्लभ हल्दिया से भी निरन्तर लेखन के प्रति प्रोत्साहन मिला। उच्च शिक्षा साहित्य रत्न व एम ए विवाह के बाद ही प्राप्त की।

प्रारभ मे कविताएँ भी लिखी किंतु धीरे–धीरे कहानी लेखन को अपनाया। सरिता, मुक्ता, नवज्योति, मनोरमा एव राजस्थान पत्रिका में निरन्तर कहानियो का प्रकाशन होता रहा है। आकाशवाणी के अलवर व जयपुर केन्द्रो द्वारा समय–समय पर कहानियो का प्रसारण हुआ है।

सामाजिक कार्यों मे रूचि रही है। अनेक महिला संगठनो से जुडी हैं। मौन रहकर साहित्य साधना मे सुख व आनन्द प्राप्त करती हैं। सगीत व पुस्तको से लगाव है। समाज के पीड़ित, उपेक्षित वर्ग के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति आप में सदा बनी रही है। ●